पाँचवाँ दस्ता

हिन्दी ADDA

अमृतलाल नागर

पाँचवाँ दस्ता

सिमरौली गाँव के लिए उस दिन दुनिया की सबसे बड़ी खबर यह थी कि संझा बेला जंडैल साब आएँगे।

सिमरौली में जंडैल साहब की ससुराल है। वहाँ के हर जोड़ीदार ब्राह्मण किसान को सुखराम मिसिर के सिर चढ़ती चौगुनी माया देख-देखकर अपनी छाती में साँप लोटता नजर आता था। बेटी के बाप तो कई धनी-धोरी किसान थे, मगर जंडैल के ससुर एक सुखराम ही हो सके। लड़ाई की चढ़ती में जो किसान चेत गए थे, उनमें एक सुखराम भी थे। कच्चे घर पर नया फँसूफी चेहरा बनवा लिया गया था, सो अब तारा का ब्याह होते ही आठ महीने में दो पक्की मंजिलें भी चुन गई। 'लखनऊ' से ठेकेदार आया, मकान में अँग्रेजी फैसन बना गया। गुसलखाना और डरैसरूम - जाने कैसे-कैसे डिजैन ऊपर की मंजिल में निकाले गए हैं। सुखराम के घर तो मानो कलजुग से सतजुग आ गया।

तारा के लिए कहा ही क्या जाए? उसे तो भाग ने आसमान से सात सखी का झुमका ही ला के सजा दिया है। जितनी ब्याह के लिए भारी पड़ रही थी, उतनी ही फूल-सी सुहागवती बनी। शहर से नित-नई चीजें आती हैं, हर महीने डेढ़ सौ रुपये का मनीआर्डर सरकार से आता है। तारा की साड़ियाँ रखने के खातिर ऐने जड़ा हुआ बड़ा भारी कपाट आया, सिंगारदान और बढ़िया मसहरीदार पलंग, उस पर हाथ पर ऊँचा गद्दा और फोनूगिराफ बाजा, हरमुनिया बाजा, सिट के सिट जड़ाऊ गहने-रानी-महारानियों के भी ठाट-बाट और क्या होते होंगे? तारा के लिए मास्टरनी आई। मास्टरनी का कमरा-गुसलखाना बना। मास्टरनी के साथ किताबें आई और अब तो पंडित सुखराम मिसिर के घर के आगे लोटनेवाला कुत्ता भी ए बी सी डी भौंकता है।

जंडैल साब के घर नहीं है। जिंदगी लड़ाई के मैदान में ही बीत गई। अब पचास की उमिर में ब्याह किया, सो भी ऐसे जंडैली ढंग से कि दिन में दस बजे की लगन निकाली गई, दोपहर में सुहागरात हुई और तीन बजे का टिफिन खा के जंडैल साब चले भी गए। उसी दिन उन्हें हवाई जहाज में बैठकर काश्मीर की लड़ाई लड़ने जाना था। ये सब बड़ी-बड़ी बातें गाँव में सुनी गई थी। इसके बाद अखबारों में खबर छपी थी कि उन्होंने काश्मीर में एक लड़ाई जीती है, उन्हें बड़ा इनाम-ओहदा मिला है। फिर एक बार अखबारों में उनकी फोटू भी छपी, लड़ाई के मैदान में पंडित जवाहरलाल उन से हाथ मिला रहे थे। कुछ दिन हुए, तब ये खबर आई थी कि एक नए मोर्चे पर उन्होंने दुश्मनों को बड़ी बहादुरी के साथ मार भगाया, पर आप बहुत चोट खा गए। जब तक अस्पताल में रहे, रोज 'तारा' के पास काश्मीर से तार आता था। अब सुना कि एक महीने की छुट्टी पर तारा से मिलने के लिए आ रहे हैं। यह भी सुना है कि यहाँ एक रात रहकर सवेरे तारा के साथ मोटर में लखनऊ चले जाएँगे। वहाँ से हवाई जहाज पर उसे

बंबई-कलकत्ते की सैर कराने ले जाएँगे। बड़े लोगों की बड़ी-बड़ी बातें हैं और तारा भी अब रानी है - रानी बहू कहलाती है।

झुटपुटे बखत से गाँव में हरेक के कान बजने लगे कि अब जाने मोटर का 'हारन' सुनाई दिया। सुखराम के घर तो मानो हर एक को दलेल बोल दी गई थी। ऐसी दौड़-भाग कि जैसे एक पूरी बारात की अगवानी का इंतजाम हो। कड़े-धड़े, बाले-बेसर से मढ़ी हुई मालकिन को रसोईघर के पकवानों के सिवा दुनिया की सुध नहीं, सुखराम महाराज को सवेरे से घड़ों पसीना चू गया। बड़कऊ बहनोई की अगवानी के लिए लखनऊ गए हैं, छुटकऊ को सीसा-इलामारी और दरवाजों को कपड़े से रगड़ते-रगड़ते आज पूरे पाँच रोज हो गए, मगर अभी भी संतोख नहीं होता और रानी बिटिया तो आज ऊपर से उतरी ही नहीं।

तारा के ध्यान में आहट बँध गई थी। 'उनकी' सुध में सब कुछ बिसर गया - 'वो' भी। बस एक ध्यान बना था और वह उसी में रम गई थी।

सूरज पीपल के पार उतर गया और पत्तों की झिलमिलियों से सुनहरी किरनें फूट पड़ीं। काले-धौले बादल पच्छिम में सिमट आए और ढलते सूरज का सिंदूर लेकर रंगीन हो गए। पीपल की चोटी पर बाँस से बँधा हुआ बजरंगबली का मटमैला झंडा अँधेरे को रफ्ता-रफ्ता अपनी ओर खींचने लगा और पीपल के बसेरे आबाद होने लगे। तारा देर तक इन सबको देखती रही थी, पर सूझ कुछ भी न रहा था।

'तारारानी!' मास्टरनी दीदी ने कमरे में आकर आवाज दी। पेड़ पर कौओं की काँव-काँव, चिड़ियों की चहचहाहट और नीचे के खन में दद्दू, अम्मा और कामकाज के गुल-गपाड़े के साथ-साथ दीदी की आवाज तारा के कानों में पहुँची। हाथ तुरंत सिर के पल्ले पर पहुँचा और घूँघट सरकते-सरकते रुक गया। उसने सिर उठाकर दीदी की ओर देखा, परेशानी और थकान पर लजाकर मुस्कराई, तन और सिमट गया।

दीदी हँसने लगी। दीदी की हँसी तारा को न भाई। आज उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वो आ रहे हैं। इतने महीनों में पहली बार आ रहे हैं। कहीं घूँघट फिर आड़े न आ जाएँ। वह उन्हें कैसे देखेगी? कैसे बात करेगी? इसी सोच में उलझते-उलझते तारा खो गई थी और उसी खोएपन में वह सब कुछ भूल गई थी। अब फिर कलेजे की धुकधुकी से मन की लाज सिमटने लगी।

दीदी हँसते हुए पास आई। उसकी साड़ी के पल्ले को सिर से गिराते हुए कहा :

"घूँघट के पट खोल री..."

"नहीं दीदी, इस दम जाओ!"

आदत के खिलाफ और होश में पहली बार तारा ने दीदी को झिड़क-सा दिया, और उठकर खिड़की के पास जा खड़ी हुई। दीदी को बिजली के करेंट-सा धक्का लगा। उन्होंने महसूस किया कि उनकी गँवार-देहाती सखी और चेली में भी हुकूमत का रोब आ गया है। हालाँकि आवाज में परेशानी का कंपन भी पहचाना। दीदी को जलन और डाह भरी खुशी हुई। मगर ऊपरी तौर वह और भी जोर से खिलखिलाकर हँस पड़ी और तारा की ठोड़ी का चुम्मा लेती हुई कमरे से बाहर हो गई। वह सोच रही थी कि इस फूहड़ को घूँघट से परेशानी है। मजा हो जब कि कर्नल तिवारी आते ही इससे बेरुख हो जाएँ। चार दिन की चाँदनी की तरह इस दिहातिन गुड़िया की हेकड़ी सदा के लिए हवा हो जाएँ।

मन-ही-मन दाँव-पेंच खाती हुई दीदी तारा के कमरे से निकलकर अपने कमरे की तरफ बढ़ गई।

ब्याह के बाद से तारा अपने-आप के लिए उलझन बन गई थी। ब्याह के पहले वह अपने-आप के लिए भार थी। उसकी उम्र सोलह की जवानी को पार कर चुकी थी और उसका ब्याह नहीं हुआ था। नाते-गोते, टोले-पड़ोस की चार उँगलियाँ उसकी उम्र पर उठने लगी थी। सुखराम मिसिर के बड़े बेटे और लड़की के अब तक कुँवारे रहने के पीछे एक भेद था, जो दुनिया के लिए अब हँसी-ठट्ठे का साधन बन रहा था।

सुखराम जरा पैसे की तरी में आ गए थे। पहले वह गाँव के औसत लोगों में भी गरीब ही माने जाते थे, इसलिए नए धन का मद डबल तरी ला रहा था। बड़कऊ के लिए सुखराम ऐसा रिश्ता चाहते थे, जहाँ समधी उनके चढ़ते मद को सुहला सके। कुल के हेठे, अकड़ की बीर विक्रम बहादुर। गंज में सट्टे की दलाली करते थे, सो शहर तक घर-आँगन के समान उनका डोलना होता था। मन के नक्शे बढ़ गए थे, इसलिए सुखराम की नजरों के आसपास के गाँवों तक अपनी मेल के गोतों में सबकी कुल-मरजाद छोटी हो गई थी। मगर शहर से कौन आवे? बड़कऊ के ब्याह की उमर खिंचने लगी। तारा का ब्याह भी इसी फेर में रोक रखा था। लड़के की ससुराल की रकम से दूने होकर सुखराम तारा का रिश्ता शहर में करना चाहते थे, जिससे मरजाद में चार चाँद लगे।

जब ब्याह की उमरें चढ़ने लगी तो चक्कर में पड़े। खासतौर पर बेटी भारी पड़ने लगी। सुखराम की सारी अकड़ हवा हो जाती, जो गंज में माधो गुरू से भेंट न होती। माधो गुरू

जंडैल साहब के लिए कन्या खोज रहे थे। जंडैल साहब का 'अडर' था कि गाँव में ब्याह करेंगे, सो देहात के ब्राह्मनों को समधी बनाने के लिए, माधो गुरू इस अकड़ से खोज कर रहे थे, जैसे वह खुद ही जंडैल के बाप हो। सुखराम महाराज की अकड़ को उनकी अकड़ की चरण-शरण पाने में ही अपनी गति दिखाई दी। दुम की तरह माधो गुरू के साथ जुड़ गए। किसी तरह मना-मुनू कर उन्हें अपने घर लाए। छप्पन बिंजन का भोजन करा के एक गिन्नी दक्षिणा दी। तब लड़की को दिखाया। सुखराम के बच्चे गोरे हैं। सहज शील और लाज ने तारा की सुंदरता को और भी सँवार दिया था। गिन्नी की चमक में तारा उन्हें साक्षात लक्ष्मी-जैसी दिखाई दी। ऊपर से मलकिन ने अपनी सोने की बड़ी नथ के बेसर को हाथ से घुमा-घुमाकर यह भी बता दिया कि उनकी बिटिया सब कुछ पढ़ी-लिखी है। रामायन बाँच लेती है, चिट्ठी-पत्री कर लेती है और दोहे-चौपाई तो ऐसे राग से सुनाती है कि पाँच गाँवों की औरतें इसकी बलइयाँ लेती हैं।

मलकिन के बखान से नहीं, अपनी समझ से माधो गुरू को यह विश्वास हो गया कि जंडैल साहब का जी हर तरह से भर जाएगा। इत्ते बड़े फौज के जंडैल हैं - कमांडर-इन-चीफ लाख अपने मन से गाँव के गरीब ब्राह्मन की कन्या का उद्धार करना चाहें, मगर माधो गुरू की निगाह में जाँचने के लिए तो जंडैल के ससुर की कुछ-न-कुछ अच्छी हैसियत होना जरूरी था।

अपने मीठे बोल और बुद्धि की चतुराई से, सुखराम गंज की दलाली के नए धंधे में गाँव के एक हल से बारह हलों के किसान हो गए थे। शहर में सफलता पाकर उनके मीठे बोल गाँव में ऐंठने लगे। अपनी हैसियतवाले दूसरों को यों तो जथाजोग मान-सम्मान देते थे, उनके सौदे-पट्टी में धेले-पौने का ऊँचा मुनाफा भी करा देते थे, मगर इस अहसान के बोझ से, औरों को हल्का समझकर, अपने बड़प्पन को भारी-भरकम भी बनाना चाहते थे। लड़ाई की चढ़ती में गाँव के कई घरों के चेहरे पक्के बने, मगर वह पुरानी मरजाद के ऊँचे फाटक और पक्के चबूतरों तक ही, जूने-पुराने मेमार कारीगरों के हुनर के भरोसे, घराने की मरजाद बढ़ाकर रह गए।

सुखराम शहर के कारीगर लाए। घर का चेहरा फैंफूसी बनवाया। आगे के दरवाजे पर सिरीमिंट का चौखटा बनाकर उस पर फूल-बेल काढ़ी गई। तोता-मैना के डिजैन बने। दरवाजे के दोनों तरफ गुलदस्ते बनी टेलौं के पत्थर जड़े गए। दोनों तरफ बड़े-बड़े आले, एक में शंकरजी की फोटू की टैल, दूसरे में राधा-किसन की जोड़ी और दरवाजे के ऊपर गनेसजी। बैठकों का नया चलन किया। यह किसानों में बड़ी बात थी। सुखराम के बोलने में तो करीब-करीब वही बात थी, मगर चलन और रहन-सहन में बहुत फर्क आ गया था।

उन्होंने अपने मकान के ऊपर दो शेर और जंगल की कारीगरी का काम बनवाया। उसके बीच में 'ऊँ' और 'मिश्र निवास' भी लिखवा लिया। पटवारी बैजनाथ का घर दो मंजिल का था, इसलिए गाँव की मरजाद में उस घर का शुमार था। सुखराम मिसिर एक ही मंजिल में ऐसे-ऐसे कर्तबों से चढ़ गए कि चार के चर्चे में किसी-न-किसी बहाने उनका नाम आना जरूरी हो गया। बराबरवाले सब मन-ही-मन उनसे कटते थे और छोटे लोगों को भी 'सरकारी हजूरी' में एक और नए 'मालिक' को जुड़ते देखकर कोई खुशी नहीं हुई थी।

जलन इस बात से और ज्यादा थी कि सुखराम अपनी तरफ से किसी को भी लड़ाई का छोटे-से-छोटा मौका नहीं देते थे। गंज के सफल दलालों में सुखराम का आदर होने लगा। कुल के बड़े और पुराने धाक पर निभने वाले घरानों से गाँव की परंपरा में जो नेग-जोग और राम-जुहार की मरजाद कायम थी, सुखराम उस लक्षमन की लकीर को लाँघकर गंज और शहर से अपनी सफलता के लिए नई मरजाद लाए थे। सुखराम के बैठके में एक-न-एक व्यापारी या दलाल मेहमान बना ही रहता था। सुखराम अपने नए हौसले को गाँव की पुरानी मरजाद पर लाद रहे थे। ऊपर से सब अमनचैन था, मगर मनों में ज्वालामुखी भड़क रहे थे।

पैसे से हैसियत बनाने की चढ़ा-ओढ़ इतनी मुश्किल, सख्त और तेज हो गई थी कि हर शख्स एक-दूसरे से सदा एक हाथ आगे बढ़ जाने के लिए ही उतावला और दीवाना बना रहता था। जो चढ़ न सके, पिसते ही चले गए। उनकी गुलामी उतनी ही मुश्किल, सख्त और तेज हो गई। जो जितना बड़ा पैसेवाला है, वह उतना ही अपने से छोटों पर अपनी खुदपरस्ती का बोझ डालता है। वह आमतौर पर खुशामद को आदर समझता है और इस झूठे रोब में अपनी जीत मानकर ज्यादा से ज्यादा उसकी माँग करता है। हर छोटा आदमी अपने से बड़े आदमी की खुशामद करने को मजबूर है और हर बड़ा आदमी किसी न किसी से छोटा भी है। इसलिए हर आदमी दूसरे की खुशामद करता है और दूसरों से अपने लिए वही चाहता भी है।

लड़ाइयों में पैसे की चढ़ा-ओढ़ बढ़ जाती है। पहली लड़ाई में बहुत से लोग तरह-तरह से बन गए थे और दूसरी लड़ाई के जमाने तक तो पुराने इज्जतदार हो गए थे। इससे दूसरी लड़ाई में औरों का हौसला बढ़ा, क्योंकि इस बार लोग पहचान गए थे कि लड़ाई में व्यापारी लाल हो जाता है। लोग-बाग, दस-दस बरसों से दूसरी लड़ाई की मनौतियाँ मान रहे थे और जब दूसरी लड़ाई आई तो धड़ाधड़ लोग लाल बनने लगे। जितनी कशमकश बढ़ती गई, उतनी ही चिढ़ थकान और पैसे के जोर पर हैसियत की प्यास

भड़कती गई। नीति, कुनीति, धरम अधरम सब भाड़ में गए और स्वारथ की दौड़ हर एक के साथ हवा-सी लग गई।

लड़ाई के छह वर्षों में और उसके बाद व्यापार अब धंधे की भावना से नहीं होता। एक दूसरे को खिझाने, चिढ़ाने और कुचल देने के लिए ही दिवानगी के साथ हर एक अपनी बुद्धि-चतुराई का प्रयोग करता है। सुखराम संस्कीरत का यह श्लोक जानते हैं कि 'ब्यौपारे बसती लच्छमी।' और माधो गुरू जैसे धर्मधुरंधर पाधा-पुरोहित ही अपने जिजमानों को ऐसी संस्कीरत के वेद-शास्त्रों का प्रमान दे-देकर बढ़ावा देते हैं।

कलजुग के चौथा चरन देने के कारन धरम-करम धरती से लोप हो रहा है। ब्राह्मण महराजों की पहले जैसी धाक अब नहीं रही। पहले जमाने में जिजमान को जरा-सा डर दिखाते ही ब्राह्मण पुरोहितों की पाँचों उँगलियाँ घी में पड़ जाती थी। अब कोई उतना डर नहीं मानता। अँग्रेजी राज ने माधो गुरू-जैसों की पूजा छीन ली। बाबा के जमाने में आठ गाँव पुन्न में मिले थे। सोने, चाँदी और पीतल के बर्तनों से घर की दो कोठरियाँ गँजी हुई थीं। बाप ने सारे कोठों की नथें चुन-चुनकर उतारीं और घर-फुँक तमाशा देखा। माधो गुरू के चार भाई पच्चीस घरों की जिजमानी के हिस्सा-बाँट में सिर-फुटौवल कर शास्त्र के बजाए शस्त्र का प्रमाण देने लगे। उनके लड़के अब पत्रे में विश्वास नहीं करते, पान, शरबतों की दुकान करते हैं। माधो गुरू ही किसी तरह धरम करम सँभाले बैठे हैं। धरम-पुन्न करने वाले पुराने जिजमान भी अभी एकदम से लोप नहीं हुए। इसी से धरती अभी भी सँभली हुई है और माधो गुरू को साल में चार-पाँच सौ आमदनी जैसे-तैसे हो जाती है।

ऐसे परम घोर कलजुग में जंडैल साथ जैसा महारथी जिजमानी उन्हें पूर्व जनम के पुन्न-परताप से ही अकस्मात् मिल गया।

कर्नल तिवारी घर बसाना चाहते थे। घर के बिना उनका हर तरह से भरा-पूरा जीवन घुने हुए बाँस की तरह खोखला हो रहा था। दस की उम्र में सौतेली माँ के अत्याचारों से तंग आकर वह अपने घर से भागे थे। तंगदस्ती में बेसहारा और फटे हाल भटकते-भटकते लखनऊ आए। एक फौजी, हिंदुस्तानी कप्तान के बँगले पर नौकरी मिली। अपनी मेहनत और ईमानदारी से सबको भा गए। इनके ब्राह्मण होने और मुसीबत के मारे होने की कथा ने कप्तान साहब की धर्मात्मा बहू को इनसे छोटा और मुसीबत के मारे होने की कथा ने कप्तान साहब की धर्मात्मा बहू को इनसे छोटा काम न लेने की बुद्धि दी। कप्तान साहब इने-गिने हिंदुस्तानियों में थे, जिन्होंने खुशामद के बल पर फौज में अफसरी का ओहदा उस जमाने में हासिल किया था। रोब और

दबदबे के आदमी थे। उनकी निगाह हो जाने से ये पढ़े-लिखे और जवान होने पर फौज में भरती हो गए। पहली लड़ाई देखी, फिर दूसरी लड़ाई देखी। फिर घर बसाने की इच्छा उनके मन में सैलाब के पानी की तरह तेजी से बढ़ने लगी।

घर का न होना, किसी अपने का न होना, उनकी सारी सफलता को निकम्मा बना देता है और अपने से उनका मतलब है अपनी पत्नी, अपने बच्चे। उम्र और ओहदे बढ़ने के साथ-साथ उनकी यह इच्छा भी बढ़ती गई। अपने देश से दूर, लड़ाई के मैदान में हर एक को अपने घर की याद आती थी। उनके मातहत छोटे से छोटा सिपाही भी डाक के दिन घर से चिट्ठी पाने के लिए बेचैन रहता था। हर एक ने खर्चा भेजने के लिए, अपने घर के किसी न किसी रिश्तेदार का नाम लिखवाया था। फौज में भरती के वक्त कप्तान साहब के मार्फत ही उनके घर का पता दिया गया था और वह घर अब मिट चुका था। कप्तान और उनकी पत्नी के दुनिया में न रहने के बाद उनके दोनों लड़कों ने इनसे कोई संबंध न रखा। अपने सौतेले भाई-बहनों के साथ फिर से नाता जोड़ने की इच्छा कभी-कभी होती तो है, मगर मन को किसी तरह का उत्साह नहीं मिलता। अलावा इसके जाने कौन कहाँ होगा? चालीस बरसों से कोई खैर-खबर नहीं। दुनिया से उनका जो कुछ भी नाता है, वह नाश और प्रलय का है। स्त्री से उनका जो भी नाता है, वह फौजी चकलों और सोयायटी की तितलियों के आवारा तन तक ही सिमटकर रह जाता है।

लड़ाई के दौर में उनके बहुत-से साथियों ने अपनी शादियाँ भी की। किसी ने किसी फिल्म स्टार से, किसी ने गोरी चमड़ीवाली मेम से। कइयों ने 'इलेस्ट्रेटेड वीकली' में तस्वीर छपाने लायक सामाजिक विवाह भी किए। मगर कर्नल तिवारी ऐसा घर नहीं चाहते थे। उनके ख्याल में ऐसा घर घर नहीं रहता, चकले का दूसरा रूप बन जाता है या फिर नासमझी का घिरौंदा। वह घर चाहते थे, जैसे कि 'भले लोगों' के होते हैं। वह घर चाहते थे, जैसा कि उनको पालने वाले कप्तान साहब का था। वह घरवाली चाहते थे, दुनियादारी चाहते थे, नाते-गोते और रस्म-रिवाज चाहते थे।

मगर चाहने से ही सब कुछ नहीं मिल जाता। वह दुनिया को आबाद करना चाहते थे और उसे बर्बाद करना उसका फर्ज था। इनसानियत और राजनीतिक आदर्शों के नाम पर यह विनाश ही उनके ईमान के लिए सबसे बड़ा सत्य था।

कर्नल तिवारी मोर्चे पर मोर्चे बढ़ते चले गए, साथ ही साथ उनकी उम्र और घर बसाने को इच्छा भी दिनोंदिन तेजी के साथ जोर पकड़ती गई। जर्मनी, जापान पर साथी देशों की विजय उनके लिए महज एक साधारण घटना का ही मूल्य रखती थी। अपने

सैनिक जीवन के अनुभव और दुनिया की राजनीति के रवैये से वह यह जानते थे कि लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई। बिजलियों की रोशनियाँ, आतिशबाजियाँ, शराब जलसे, सम्मान, तमगे और ऊँचे-ऊँचे ओहदों के हुजूम में उन्हें महज लड़ाई के नक्शे ही दिखाई देते थे। शांति कही भी न थी। फिर भी यह चेतना उनके मन में बहुत साफ और उभरी हुई न थी। ऊपरी तौर पर उन्हें इस बड़ी जीत में अपने हिस्से का अहसास था और राजनीतिक रूप में अपने देश की गुलामी को ही वह अपनी उदासीनता का कारण मानकर सनके हुए थे।

लौटकर देश आए। उनका देश हलचलों से भरा हुआ था। उनका मन भी हलचलों से भरा हुआ था। देश और मिट्टी का प्यार उनके दिल में सच्चा होते हुए भी खोखला था। समुंदर पार पराई धरती पर देश के ध्यान से अपनेपन का नाता जुड़ जाता था। देश आने पर वह अपनापन भी खो गया। उनका कहीं भी अपना ठिकाना न था, अपना घर न था। छुट्ठी लेकर बड़े-बड़े, शहरों में घूम-घूमकर वह अपने को बहलाते रहे। दोस्तों के यहाँ मेहमान हुए, दोस्तों के बच्चों के चचा-चाऊ बने, उनकी बीवियों को भाभी कहकर पुकारा, मगर मन का नाता न जुड़ा।

कर्नल तिवारी एक उलझन में फँस गए। पचास की उम्र हुई, शादी कर के घर बसाएँ तो कितने रोज के लिए? अपनी ढलती उम्र में किसी जवान जहान लड़की का पल्ला बाँधने में उनके दिल को एक महसूस होती थी। लेकिन वह झिझक इतनी बड़ी कभी न हो सकी कि शादी का ख्याल उनके मन से उतार दे। उलझन में दिन गुजरते गए और उनके बंगाल जाने का हुक्म आ गया।

नोआखाली के दंगे दबाए जाने के लिए फौज की ताकत माँगते थे। नोआखाली का अनुभव कर्नल तिवारी के लिए दुनिया की दो बड़ी लड़ाइयों से भी ज्यादा तीखा साबित हुआ। उन्होंने लड़ाई के बड़े-बड़े मैदान देखे थे। बमों से उजड़ते और जलते हुए घर और बेबस इनसानों के तड़प और चीख भरे मौत के नज्जारों को भी, खुद-हिस्सा लेकर देखा था और उसमें हिस्सा लेने के वजह से उन्हें मान-सम्मान और इज्जत-ओहदा मिला था। वह लड़ाई थी और वह दंगे। उन लड़ाइयों के लड़ाकुओं को बहादुर, देशभक्त, राजभक्त, और इनसानियत का पुजारी माना जाता था, जबकि इन दंगों में लड़ने वाले गुंडे, कमीने और हैवानियत के पुतले माने जाते हैं।

कर्नल तिवारी के बहुत से साथी हिंदू अफसरों को सरकारी तौर पर अपनी डयूटी बजाते हुए, गैर-सरकारी तौर पर मुसलमानों से नफरत थी। हिंदू और तो और-बच्चों, बड़े-बूढ़ों और जवानों के ऊपर ढाए जाने वाले जुल्म हर एक का खून खोला रहे थे।

कर्नल तिवारी का अनुभव दूसरे किस्म का था। घर और रिश्तों के नाश को इतने नजदीक से और बेलाग होकर वह पहली बार देख रहे थे। उनके दिमाग में धर्म, जाति, और देश अहसास न था। वह तो महज यही देख रहे थे - जलता हुआ घर और तरह-तरह से तबाह होती हुई जानें, यह नरक का नज्जारा दो-दो बार सारी दुनिया को हिला देने के बाद भी आज कायम है। वह दृश्य उनके दिल पर बोझ डाल रहा था। उनके दूसरे साथी जब कभी दबी जवान से अपनी कौमपरस्ती प्रकट करते, तो उन्हें कर्नल से जवाब मिलता - "दरअसल हमें जो बुरा लगता है, यह बेबसों को तबाह होना, घरों का उजड़ना। देश, जाति, धर्म और आदर्शों के नाम पर हम हैवानियत देते हैं। जो बुरा है, वह हर हालत और रंग में बुरा ही रहेगा। निहत्थे हिंदुओं पर मुसलमानों के जुल्म अगर बुरी चीज है, तो हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिका के एटम बम गिराने को भी उतना ही बुरा मानना होगा। जर्मनों को अंगरेजों-रूसियों के नगर उजाड़ना और रूसियों-अंगरेजों का तबाह करना - यह सब एक ही किस्म के तराजू पर तोलने लायक घटनाएँ हैं। मैं इन बेबसों को तबाह करने वाले गुंडों से बदला लेने के लिए तो हर वक्त मुस्तैद हूँ, मगर हिंदू के नाते मुसलमानों से बदला लेने का खयाल भी मेरे सपने तक में नहीं आ सकता।"

कर्नल तिवारी लड़ाई से चिढ़ते चले गए। जितना नाश देखा, जितना चिढ़े, उतनी ही उनकी घर बसाने की इच्छा लौ की तरह ऊँची उठती गई, उन्हें घर चाहिए। दुनिया में हर शख्स को घर की भूख है। जिंदगी घर की भूख हैं - चींटी से लेकर इनसान तक।

कर्नल तिवारी का घर इक्यावन बरस की उम्र में अट्ठारह साल की देहातिन तारा से आबाद हुआ। जीवन की सब से बड़ी साध पूरी करते हुए भी कर्नल को चैन नहीं मिला। बसंत पंचमी की लगन धरी गई थी, ब्याह की तैयारियाँ हो रही थी कि एक दिन अचानक कश्मीर जाने का हुक्म मिला। कर्नल तिवारी मन में खीझ उठे। मगर जिंदगी भर की आदत और फर्ज का ध्यान उनके अंदर मुस्तैदी का दम भरने लगा। देश सेवा भगवान की सेवा से भी बड़ी वस्तु है, पर निजी जीवन की सबसे बड़ी माँग भी अपने हक से लिए विद्रोह करती थी। कर्नल तिवारी को ऐसा लगता था कि उनकी शादी अगर इस बार न हुई तो जिंदगी-भर के लिए उनकी यह सबसे बड़ी साध भी उनसे दूर हो जाएगी। उन्होंने तय किया कि यह शादी करके ही अपनी डयूटी पर जाएँगे। उनके पास अड़तालीस घंटे का वक्त था। उसके अंदर ही उन्हें शादी करनी थी और कितनी ही जल्दी में क्यों न की जाए... बरसों से दबे हुए हौसले ठाठ-बाट से ही पूरे होंगे।

तुरंत माधो गुरू के नाम सम्मन भेजा गया और माधो गुरू उसी रात के आठ बजे जंडैल साब की मोटर पर बैठकर सिमरौली गए, और जंडैली हुकुम सुनाया तो सबके

हाथ-पैर फूल गए। एक दिन में क्या-क्या हो सकता है? फिर शहर के बड़े-बड़े अफसर आएँगे, सैकड़ों मोटरें आएँगे, सबका इंतजाम दिन में कैसे हो जाएगा? ओर फिर पूस में ब्याह, लो भी दिन में दस बजे के भीतर लगन धरी जाएँ, यह सब कैसे चलेगा?

लेकिन जंडैल के हुकुम से सब चल गया। दूसरे दिन मोटर ट्रकों में भर-भरकर कुर्सियों, भेजें और कनात शामियाने पहुँच गए। होटल वाले का तंबू कनात अलग लगा। सुखराम महाराज चार पैरों से दौड़ने लगे, अपनी तरफ से भी कुछ कर दिखाने का जोम था। श्रीरामपुर के ठाकुर साहेब के यहाँ से हथिनी माँग लाए। शहर से नफीरी और झइयम-झइयम बाजे वाले को भी बुलवा लिया। नाई अलग न्योते की सुपारी बाँटने चला गया। गैस के हंडों की रोशनी में काम-काज और तैयारियाँ करते-करते ही रात बीत गई। जैसे-जैसे दिन चढ़ने लगा, सुखराम की नब्ज छूटने लगी।

चालीस मोटरें आई। जडैंल साहब के हुकुम से रस्में तो सब हुई, मगर ब्याह डेढ़ घंटे में ही निपट गया। मेहमानों की चाय हुई। बड़े-बड़े फूलों के गुलदस्ते और चाँदी-सोने का सामान मिला। बारह बजे तक ब्याह की सारी भीड़-भाड़ निबट गई और ऊपरवाली कोठरी में जंडैल साहब के आराम के लिए पलंग बिछा दिया गया।

तारा ब्याह के पहले अपने-आप के लिए भार थी और ब्याह के बाद एक उलझन बन गई।

उसने अपनी शादी को आँखों से नहीं, कानों से देखा था। घूँघट से ढँकी हुई मंडप में उसके साथ बैठते हुए, भाँवरे फिरते हुए, गंठजोड़े से कुल देवता को प्रणाम करते हुए तारा का मन सँकरे-सन्नाटे में गुम था। पत्नी होना और इतनी बड़भागनी पत्नी होना देहात में रहने वाली तारा के लिए बड़ा विचित्र अनुभव था। दिल का सन्नाटा अपने-आप से दहल रहा था। यह गुम्मी, यह दहलन और भी सख्त हो गई, जब कर्नल तिवारी ने उसकी कोठरी में कदम रखा। तारा सहमी सिकुड़ी गठरी-सी पलंग पर बैठी रही - अंत तक! मन "क्या होगा? जो हो! की धुकधुकी लेकर गहरे में जा समाया। उसके क्षण बहुत तेजी के साथ सिमटने लगे।

तिवारी अपनी पत्नी को चाहते थे। तारा के महावर लगे गोरे पैरों में बिछुए और मेहँदी लगे गोरे हाथों में अँगूठियाँ, अजीब किस्म से कर्नल तिवारी को तारा के बहूपन का एहसास करा रहे थे। तारा उनकी थी, उनकी अपनी। अपनी तारा के गोरे मुख को वह देखना चाहते थे। घूँघट हटाने के लिए बार-बार कहते रहे, पास बैठ गए, कि कंधे पर हाथ रखकर घूँघट हटा दें। जिंदगी भर उन्होंने औरत की लाज से खिलौने की तरह खेला है, मगर अपनी दुलहिन के घूँघट में उन्हें नारी लाज की वह पवित्रता दिखाई दी,

जिसके बिना उनका अब तक का जीवन का सूना था। कर्नल तिवारी अपनी पत्नी का घूँघट न हटा सके और तारा की लाज अपने-आप को छोड़ न सकी। कहते ही चले गए, बिना मुख देखे गए, मगर तारा की गुम्मी न टूटी।

जाते वक्त अपने ससुर से कह गए - "आज से आपकी साहबजादी के आराम और खर्च की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। यों तो मैं अपने दोस्त कैप्टेन वर्मा के बंगले पर उनके लिए सब इंतजाम कर जाता, मगर चूँकि उस माहौल के लिए वह एकदम नई हैं, उन्हें वहाँ परायापन महसूस होगा। फिर भी जिस हैसियत की जिंदगी उन्हें आगे चलकर बितानी है, उसके लिए यह जरूरी तबीयत रवाँ हो जाए। कैप्टेन वर्मा सब जरूरी इंतजाम कर देंगे और जी हाँ, ससुराल की तरफ से मैंने आपकी साहबजादी का नाम रानी बहू रखा है।"

दूसरे दिन से सुखराम उसे तारारानी, कभी रानी बिटिया और कभी रन्नो कह कर पुकारने लगे। भैया रन्नो कहने लगे, छुटकऊ रानी जिज्जी। एक अम्मा और सिउ नरायन की दद्दा को छोड़कर धीरे-धीरे सारा गाँव उसे तारो या तारा कहने के बजाए अब रानी, रानी बिटिया कहने लगा। इसके तारा को बड़ी शर्म आती थी और उस शर्म से जो घुटन होती थी, उसे वह कभी भी सहन नहीं कर सकती थी। यह उस बर्दाश्त नहीं होता कि उसका अपना नाम भी उसके लिए पराया बना दिया जाए। लोग अपने लिए खुशामद क्यों कर पसंद कर लेते हैं, यह सवाल उसके लिए एक बेहूदा पहेली की तरह न हल होने वाला और दम घोंटने वाला बन गया।

ब्याह के बाद इसे इस घर में जो कुछ भी होता, उसके लिए होता। काछी के बगीचे से दोनों बखत भाजी आने लगी, बकरी का दूध कढ़कर आए तो सबसे पहले उससे पूछा जाए। भैया, दद्दू छुटकऊ - किसी ने भी चाहे खाया हो, चाहे न खाया हो, उसकी थाली पहले परोस दी जाए। तारा को लगता कि धरती फट जाए और वह उसमें समा जाए। क्या बिटिया के लिए किसी घर में भी ऐसी हाजरी साधी जाती है? उसके लिए तो मैके का गाँव ही ससुराल बना दिया गया। यह अनहोनी भी होनी बदी थी। पैसे और ओहदे की ताकत जो चाहे सो करा ले। पैसे और ओहदे की सारी शक्ति उसके हाथ में सौंपकर एक अनजान आदमी उसे अपनी बनाकर - सब अपनों से बिराना बनाकर - चला गया। लेकिन वह इस शक्ति का क्या करे? अपने पन को अपने-आपसे क्यों कर मिटा दे? तारा के प्राण आठों पहर के लिए हत्या में टँग गए। वह नहीं चाहती कि कोई उसे बदला हुआ समझे।

सारे गाँव के लिए तारा का ब्याह एक चमत्कार था। दूसरों की सफलता पर डाह करना दुनियादारी का नियम है। यह डाह देखा-देखी में एक-दूसरे को नई-नई सफलताएँ पाने के लिए उकसाती है। मगर तारा की तकदीर ने उसे जो सफलता बख्शी थी, उस नहले पर दहला कोई क्यों कर चढ़ाए? लोगों के मन में जलन निकम्मी हो उमड़-घुमड़कर बैठ जाती थी। इसीलिए सुखराम की बेटी उनके हर जोड़ीदार के लिए ऊपरी तौर पर बड़ी ही प्यारी हो गई। यह प्यार बहुतों के घर में सुधार का शौक बना। सिमरौली में तारा के ब्याह के बाद नीलाम की अमेरिकन फौजी पतलूनों और बूटों की खपत जवानों में बढ़ गई। सस्ते किस्म के पाउडर और वैस्लीन का चलन भी ज्यादा हो गया। तारा का मरद जब उसके लिए नित नई अनोखी चीजें भिजवाता है तो हिर्स में गाँव के जवानों की जोरुओं को भी कुछ न कुछ तो फैशन में रहना ही चाहिए। यों तारा के ब्याह से पहले भी गाँव में फैशन बढ़ने लगा था। लड़ाई की महँगी में बहुत से जवान गाँव छोड़कर शहरों में चले गए थे। जब वे गाँव लौटते तो अपनी हेकड़ी जताने के लिए शहर के चलन लाते। अब उनकी माँग सिमरौली के घर-घर में ज्यादा हो गई। अपनी-अपनी आमदनी का तंग दायरा लोगों के मनों में खर्चे की उमंग को रह-रहकर छेड़ने लगा। छोटे लोगों से बड़े लोगों तक, सभी एक न बुझने वाली प्यास से तड़पने लगे।

तारा की मास्टरनी ने जब बगैर फीस लिए गाँव की लड़कियों-बहुओं को पढ़ाने की मंशा जाहिर की तो कइयों की इच्छा जागी। पढ़ने वालियों में घमंड जागा, न पढ़ने वालियाँ कलह करने में अब 'एमे-बीए' पास करने लगी। टहोके मारना, ताने कसना, बड़प्पन और फैशन की शेखी पहले से ज्यादा बढ़ गई। बाप की हैसियत पर बेटे-बेटियों की हिर्स ने बड़ों में खींचतान पहले से भी ज्यादा बढ़ा दी।

पुराने और नए जमाने का महाभारत छिड़ने लगा। सासों को नई बहुओं के नए-नए फैशन पसंद न थे, बहुओं को सासों की हुकूमत पसंद न थी। जिनके मालिक शहरों के कमासुत थे, वे अपने को बहुत कुछ समझा करती थी। देवरानी-जेठानियों की कशमकश नई जमीन पर और भी तेजी से लहलहाने लगी। बूढ़े माँ-बापों की शिकायत थी कि उनके बेटे अपनी कमाई का मोट भाग अब घर में न देकर अपने-अपने बीवी-बच्चों को देते हैं। लड़कों को अपने माँ-बापों से यह शिकायत थी कि वह, पुराने खूसट, अपने बेटों का सुख नहीं देख सकते। हर भाई घर के झगड़ों में बहस के तौर पर दूसरे भाई पर यह इलजाम लगाता कि जब वह इतनी आमदनी होने पर घर को इतना खर्च देता है, तो वह अपनी आमदनी के हिसाब से घर के खर्च के लिए ज्यादा रकम क्यों दे।

घरों में चूल्हों फूटने लगे। जिन घरों के चेहरे पक्के थे, उकने बेटे-बहुएँ हिस्सा पत्ती के लिए दिन-रात अपने माँ-बापों से कलह-क्लेश करने लगे। घरों में सास का सिंहासन बहुओं की हाथ-हाथ भर लंबी जवानों की मार से चरमराने लगा। सास घर की मालकिन का पद-गौरव एक से छिनकर कइयों के हिस्से में बँट गया। घर की हर ब्याहता स्त्री घर पर ज्यादा से ज्यादा हुकूमत चाहती है। उस हुकूमत के लिए जिसका पति जितना कमाता है, उतना ही ब्याहता का अधिकार होता है, जिसका पति कम कमाता है, वह कम अधिकारों वाली होती है। जो मन से कमजोर होती हैं, वह घर में सबसे ज्यादा सुहागवंती, भागवंती का पक्ष लेकर दूसरों पर अपनी जलन उतारने के लिए रोज चार चासनी ज्यादा चढ़ाने की कोशिश करती हैं। सास अगर सख्त हुई, यानी उसके खास संदूकचे का किसी को पता न चल सका, तो कलह बहुओं में ही रही, सास का पद किसी न किसी तरह अपनी आबरू सँभाले बना रहा। जो खुला खजाना रखती है, उनकी तालियों का गुच्छा किस बहू-बेटी के हाथ में सबसे ज्यादा आता-जाता है, इसका कलह-कलेश ठेठ सास तक पहुँचता है, जिसमें खुद सास भी एक मुजरिम होती है। जो मन की कमजोर हैं वह सबसे ज्यादा जोम रखने वाली बहू की तरफदार हो जाती हैं। पैसे की इस छुटाई-बड़ाई ने माँ के प्यार को भी ऊपरी तौर पर तब्दील कर दिया। घर में हर एक का हर एक से रिश्ता पैसे का है।

निकम्मे माँ-बाप, निकम्मे बेटे-बहुएँ, विधवा बेटियाँ और बड़ी कुँवारी लड़कियाँ, जो पैसे नहीं कमा पाते, वे अपने को इस पैसे की दुनियादारी में सबसे ज्यादा डाँवाडोल हालत में पाते हैं।

फौज में रहकर आए हुए जवान और शहरी स्कूलों में पढ़ने वाले लड़के गाँवों में अपने साथ एक पूरा बंदर का बंदर खरीद लाए थे। सिनेमा स्टारों के नाम, सिनेमा की धुनें, धूप के अमेरिकन चश्में, सिगरेट और सिगार तक, जेब में ऊँचा रूमाल, जिनके पास फाउंटेन पेन नहीं है वह क्लिप लगी पेंसिलें खोंसकर चलते हैं। अब चमड़े के पर्स रखने का चलन भी चल गया है। घड़ियाँ, साइकिलें जिनके पास हैं, वह गाँव के बड़े हीरो माने जाते हैं। उन्हें आँख लड़ाए बिना खाना ही हजम नहीं होता। आपस में दोस्तों की बातचीत की अहम चर्चा यही है कि कौन कितनी बार 'लव' कर चुका है।

ब्याह के बाद तारा गाँव की सबसे बड़ी हीरोइन बन गई। तारा को लोग दूर से ही देख पाते हैं। कभी भी कही गाँव में किसी के यहाँ जब मिलने-जुलने जाती है तो लोग देखते रह जाते हैं। साथ में या तो दीदी होंगी या महरी। दीदी और तारा बगैर चद्दर के सादी पोशाक में निकलती हैं। जिन जवानों में ज्यादा हौसला है, वह हाथ जोड़कर नमस्ते कर लेने का रिश्ता बाँध लेते हैं।

दीदी के चरचे भी कभी-कभी बेवजह ही हो जाते हैं। उनका हीरो बनने का खयाल भी आमतौर पर लोगों के दिमाग में नहीं आता। उनके चेहरे पर एक तेजी है, एक अलगाव है, जो देखते ही दूसरे के मन को झटका देता है। हाँ उन्हें पसंद करने वाले करीब-करीब सभी हैं। पढ़े-लिखे और विदेश से लौटे नौ जवानों की महफिल में दीदी की मिसाल दी जाती है और तारा के चर्चे होते हैं। रानी नाम तो बात को और भी सुगम कर देता है।

रानी उसे नीचे तबके के लोग भी कहने लगे हैं। गाँव का छोटा किसान और खेतिहार मजदूर उसे बड़े दिल से रानी कहता है। उनके लिए गाँव की अपनी एक लड़की या बहन का रानी बनना अपने लिए एक बड़प्पन की बात लगती थी। यही बात बढ़कर बहुतों में खुशामद बनी, बहुतों ने सीधी तरह एक खुशी की बात के तौर पर उसे माना, बगैर किसी मतलब के कइयों ने उससे भी वही रुख रखा, जो वे तमाम पैसे और ओहदेवालों से रखते थे। जंडैल की जोरू को सरकार के खिलाफ, काँग्रेस के खिलाफ, चार खारी-खोटी सुनाकर वह अपने जी की भड़ास निकाल लेते थे। तारा के लिए गाँव में निकलने पर यह एक सबसे बड़ी सजा थी। पति की तारीफ उसके जवान मन के सपनों को बहुत ऊँचा उठा देती थी। जब वह किसी से अपने पति की तारीफ सुनती तो सिर का पल्ला कुछ न कुछ घूँघट-सा बन ही जाता था। अपने पति के बड़प्पन और तारीफ की बातें सुनने की तो आदत थी, लेकिन ऐसे झूठ-मूठे आवाजें-तवाजे सुनकर वह काँप जाती। ऐसा क्यों होता है? उसका पति किसी का भी दुश्मन क्यों हो? यह कांग्रेस तो सबके लिए अच्छी थी - देश के लिए आजादी ले आई। फिर ये लोग उसकी बुराई क्यों करते हैं?

तारा के लिए अपने पति का पेशा-ओहदा एक अजब उलझन बन गया। न जाने कब से हर एक के मन में यह बात जम जाती है कि फौज का सिपाही एक बड़ी चीज होता है। उसने और गाँव की हर औरत ने ढोलक के गीतों वाले 'बाँके सिपहिया' को सदा के पहचान रखा है। इन आवाजों-तवाजों को सुनकर तारा के मन में सहज सवाल उठता है कि आखिर उन्होंने इन लोगों का क्या बिगाड़ा है?

और साथ ही साथ तारा के ध्यान में यह बात भी अटकती कि आखिर किसी ने उनका क्या बिगाड़ा है, जो वह दूसरों से लड़ते हैं? बड़ी-बड़ी दूर हो आए। जर्मनी को मार और अब जो वह कश्मीर में लड़ रहे हैं, तो किसके साथ उनकी दुश्मनी है? दीदी से अक्सर इस बात पर बहस हो जाती थी। दीदी कहती - "वह एक सिद्धांत के लिए लड़ते हैं। एक आदर्श के लिए लड़ते हैं। राष्ट्र और देश के लिए लड़ते हैं।"

मगर इससे भी तारा के मन की चुभन निकल न सकी। राष्ट्र, आदर्श और सिद्धांत कोई भी हो, वह दो बिना जान-पहचान के आदमियों को आमने-सामने खड़ा करके दुश्मनी क्यों पैदा करवाता है? जिनकी दुश्मनी है, वही आपस में लड़ के फैसला क्यों नहीं कर लेते? करोड़ों को सिपाही बना-बनाकर कटवा क्यों देते हैं? घरों के ऊपर हवाई जहाज आ-आकर जो शहर के शहर बमों से मटियामेट कर जाते हैं, तो उन शहरवालों ने उन हवाई जहाज वालों का क्या बिगाड़ा था? हवाई जहाज वालों से उनकी कभी की जान-पहचान भी नहीं थी, फिर दुश्मनी कैसे हो गई?

दीदी इस बात पर उसे कई बार समझा चुकी हैं कि यह लड़ाई कुछ आपस की दुश्मनी जैसी नहीं हुआ करती। दीदी बड़े जोश के साथ उसे समझाती - "यह लड़ाई वह लड़ाई है, जो सदा से होती चली आई है और इस लड़ाई में लड़ने वाले लोग वीर और योद्धा माने जाते हैं। पुराने जमाने में जैसे महारथी हुआ करते थे, वैसे अब के जमाने में कर्नल-कमांडर होते है।"

तारा इस दलील से लाजवाब तो ही जाती, मगर उसके मन से यह सवाल न जाता। लड़ाई है तो अच्छी, उसके पति को इतना मान-सम्मान और रूतबा दिया, मगर तारा के लिए वह बड़ी खराब हैं। उसके प्राण टँगे रहते हैं और इसी वजह से यह सवाल उसके मन से छूट ही नहीं पाता कि लड़ाई की जरूरत ही क्या है?

वह लड़ाई से काँपती है और जब कभी जी जोर से धड़क जाता है, तो साड़ी का पल्ला फौरन पीछे गिराने के लिए हाथ बढ़ जाता है। उड़ी के मोर्चा से जब उनके जख्मी होने की खबर आई थी, तो पैरों के नीचे धरती का भान बिसर गया। जब तक अस्पताल में रहे, किसी करवट भी कल न पड़ी। दिल की धड़कनों में एक तीर-सा बिंध गया कि उसने अपने-आप को उस दिन सौंप क्यों न दिया?

वह अब घूँघट से नफरत करने लगी थी, वह घूँघट से डर गई थी। तारा एक तरह से अपना भरोसा खो रही थी। तकदीर ने उसे चमकाया तो, मगर इतनी जोर से उछाला देकर कि मन में खूद अपनी ही चमक बैठ गई। वही चमक बहाने-बहाने जी में डोला करती थी।

तारा अपने से पराई हो गई थी। इस पराएपन को वह बर्दाश्त नहीं कर पाती थी और वह सदा चौकन्ना रहकर इस बात के ध्यान में रहा करती थी कि कोई उसे बदती हुई न समझे। इस चौकन्नेपन से तारा को इन आठ महीनों में थका-हरा डाला। वह हर-एक को खुश रखना चाहती थी कि हर-एक उससे खुश रहे। इसके लिए वह अपने व्यवहार और कामकाज से सदा सावधान रहने की कोशिश किया करती थी, फिर भी बराबर

यही महसूस किया करती कि वह सबको खुश नहीं कर पाएगी। उसे एक डर-सा बँध गया कि लोग उससे मन ही मन में नाराज रहते हैं और ऊपर का प्यार दिखाते हैं।

जब मैके के घर की नई मंजिल चढ़ाने की बात, दामाद की ओर से ससुर को चिट्ठी में लिखकर आई और दद्दू ने आँगन में आकर सुनाई तो तारा को भी अच्छी नहीं लगी थी। अम्मा को सचमुच खला था। उन्होंने कहा - "वह लाख बड़े आदमी हों, पर हमारी भी गँवई-गाँव की मरजाद है। लोग सात गाँव तक नाम धरेंगे कि बेटी के धन पर धन्ना सेठ बनते हैं।"

सुखराम महाराज इस पर 'हँ-आँ-आँ...' कर के ही रह गए। बड़काऊ जोर से बोले - "यह कोई कहेगा ही कैसे? हम नहीं कह देंगे कि वह अपनी बहु के लिए बनवा रहे हैं। हम क्या कर सकते? एक तरह से हमने यहाँ जगह देकर उनकी ही तकनीक बचाई है। मास्टरनी के लिए कहीं न कहीं तो जगह बनती ही।"

दद्दू इसी बात को ले उड़े - "दामाद जब अपने मुँह से कहता है तो हम कर ही क्या सकते हैं। हमारा तो यही धर्म है कि दामाद कहे, हम तुम्हारे सिर पर मकान बनाएँगे, तो झट से हाथ जोड़कर झुक जाएँ।"

इसी तर्क के सहारे बँधकर, मन के लोभ को सुंदर जामा पहनाकर, दद्दू और भैया तारा के गुलाम हो गए।

जब तारा सुहागवती हुई और अपनी माँ के घर की महारानी बनी, तो मलकिन का मन औरत वाले कोठे पर चढ़ गया। मलकिन को यह अच्छा नहीं लगता था कि उनके घर में कोई उनसे भी बड़ा हो। बेटी से एक जगह मन ही मन चिढ़कर वह रोज बेटे के ब्याह और बहू की बात चलाती थी। उसके अच्छे से अच्छे काम पर भी कुछ न कुछ बुरी बात चिपका ही देती। जी की जलन को माँ की सिखावन का जामा पहनाने में मलकिन को आड़ मिलती। दीदी भी अपने मास्टरनी होने का फायदा उठाकर तारा पर हुकूमत का हक-सा चाहती थी। तारा एक हद से ज्यादा इस मन में न समाने वाले भार को थकी हुई श्रद्धा के साथ निभाती चली गई और इस तरह धीरे-धीरे अपने-आप पर अनुचित दबाव डालने के कारण वह खुद अपने से ही दहलने लगी। तारा इससे नफरत करती।

तारा को चीजों से नफरत होने लगी। यों तो वह माँ को भी अब नहीं बर्दाश्त कर सकती, मगर दीदी की हुकूमत को तो वह अब किसी सूरत से भी पचा नहीं पाती थी। वैसे तारा इतने दिनों में ही बड़ी दुनियादार बन गई है। वह जबान पर लगाम रखकर बात करना जानती है। उसकी यही चतुराई दीदी और उसके बीच का काँटा थी।

तारा सब बातों पर बहुत सोचा करती है। उसका बस तो किसी पर चलता नहीं। हाँ, अपने को जैसा सूझता है, सँभालती-साधती चली जाती है। दद्दू या भैया जब कभी रोटी खाने बैठें तो पटरा खुद बिछाने की ताक में रहे, पानी भर कर रखे। छुटकऊ के लिए नित नए कपड़े, किताबें, खेल वगैरह शहर से मँगाती रहे। गाँव-पड़ोस में, मिलने-जुलने में, सब से बहुत सँभलकर चलने लगी, जिससे कोई बेगानापन न माने।

घमंड को झुकाने के लिए जहाँ इस तरह सचेत रहते हुए उसमें विनय आई, वहाँ अपने-आप के लिए छोटेपन का अहसास भी हुआ। अपने ऊपर से भरोसा हिल गया और उसी को जताने के लिए तारा ज्यादा से ज्यादा सचेत रहती, जरूरत से ज्यादा चौकन्नी।

मन के इस चौकन्नेपन से उसका चैन खो गया था और वह मन ही मन एक जगह बेहद उलझने लगी-खोने लगी - थकने लगी। इस खोयेपन से उसे हरदम घबराहट होती। वह अपने-आपको निकम्मी समझकर हठ के साथ ज्यादा से ज्यादा मेहनत करने की कोशिश करती।

अपने पति के मन-माफिक बनने के लिए तारा ने जी-जान एक कर डाले। जब से दीदी आई, तारा अपने पति को पाने के लिए लगन के साथ दीदी की बताई राह पर ही चलने को अपना फर्ज मानने लगी थी। शहर की बोली सीखने में उसे कितना सिर खपाना पड़ा। पहले 'सहर' से 'शहर' कहते न बन पड़े और दीदी हँसें। उनकी चिट्ठियाँ आने लगी और तारा को जवाब देने का हियाव न पड़े। चिट्ठी लिखने के लिए दीदी रोज कोंचकोंच करें। एक दिन खुद चिट्ठी लिख दी और तारा से कहा कि अपने हाथ से नकल कर के भेज दो। तारा को उस दिन कैसे धरम-संकट का सामना करना पड़ा था। न जाने क्या-क्या बातें उसे अपनी तरफ से, अपने हाथ से नकल करके भेजनी पड़ी थी। खत के जवाब में पति बहुत खुश होकर लिखने लगे। ऐसे ही धीरे-धीरे हौसला खुलने लगा। तारा ने यह महसूस करना शुरू किया कि चिट्ठियाँ तो वह जरूर लिखती है, लेकिन उनके साथ किसी किस्म का भी लगाव वह नहीं महसूस कर पाती। इसीलिए अपने खतों के जवाब में पाए हुए पति के पत्र भी उसे अपनापन नहीं दे पाते थे। दीदी कहती थी कि प्रेम की चिट्ठियाँ ऐसे ही लिखी जाती हैं और इन चिट्ठियाँ की बदौलत ही तो कर्नल तिवारी उससे खुश हुए हैं।

तारा उलझ गई। अपने से खीझकर अंत में उसने तय किया कि वह अपने मन से चिट्ठी लिखेगी।

दीदी प्राणनाथ लिखवाती थी, इसलिए लिखती थी, मगर उस दिन जब उसने मन से प्राणनाथ लिखा तो पुलक गई, लाज की सिहरन से छक गई। उसने लिखा - "भूल-चूक को क्षमा कीजिएगा। जो गलती हो सुधार लीजिएगा। आप बड़े हैं। अब तक दीदी जैसा लिखाती थी, वैसा लिखती थी। उससे आप तो बहुत राजी-प्रसन्न जान पड़ते थे, पर मेरा जी कचोटता था। इसलिए आज अपने-आप लिख रही हूँ। आपको ऐसा पत्र अच्छा न लगे तो लिख दीजिएगा। मैं वैसा ही लिखा करूँगी। मैं अनजान-गँवार हूँ। आपकी वजह से मुझे चार में मान मिलता है। चार मेरी बात पूछते हैं। सो आपको जिसमें सुख मिलेगा वही करना मेरा धर्म है।" जवाब में कर्नल तिवारी का खत आया, पूरे दस सफे का।

तारा ने दीदी की आँखों में उसी दिन से काट महसूस की। तारा के अंदर की औरत जाग उठी। पति के खतों को फिर से दीदी के रस का साझीदार न बनने दिया। दोनों में एक खामोश-सी गाँठ पड़ गई थी। बनावट और रस्मिया-प्रेम एक दूसरे पर आँखों में जाहिर होने लगा था - दीदी की तरफ से ज्यादा। तारा ने दीदी को अपनी मर्जी पर अधिकार करने से रोक दिया।

तारा के कमरे से आने पर दीदी अपने पलंग पर ढह पड़ी और तरह-तरह से तारा की सिकंदर ऐसी तकदीर पर जलन उतारने लगी। यह जलन भी अब उन्हें थका डालती है। अब कोई चीज उन्हें जोश नहीं देती - न प्रेम, न नफरत।

जिंदगी थक गई है। तन या भार पत्थर बन गया है, जिसे न उतार पाती है, न छोड़ पाती है। उनके होश में कभी भी उनका मनचाहा न हुआ।

एक बैंक के दफ्तरी के घर पैदा हुई। पढ़ने में सदा अव्वल आने पर भी दफ्तरी की बेटी होने से अपनी बराबरवालियों में बराबरी का दर्जा न पा सकी। उनके पास अच्छे कपड़े नहीं, शान-शौकत नहीं। छठे में थी, तब बाप ने स्कूल से उठाकर इनका ब्याह कर दिया। पति-देव जुआरी, छैला और तुनुकमिजाज। दीदी हठीली, तुनुकमिजाज और रूप-रंग की मामूली। शादी के दो बरस बात ही पति ने धक्के मारकर घर से निकला दिया। दीदी मैके नहीं गई। उसी मुहल्ले में रही, अलग कुठरिया लेकर। छोटी बच्चियों की ट्यूशनें करने लगी। सिलाई-बुनाई, कढ़ाई-कसीदे के काम में होशियार थी। हरेक के सुख-दुख में दस कदम आगे बढ़कर शरीक होने वाली, नीयत-बात की साफ और मुँह पर खरी कह डालने वाली नौजवान लड़की - अपने जुआरी पति के अन्याय से सताई गई अबला नारी -जब सबला बनकर अपनी मुसीबतों से मोर्चा लेने लगी तो सब के मन चढ़ गई। दीदी ने अपने बल पर पढ़कर इंटर किया। जान-पहचान और मुहल्ले

पड़ोस में भला नाम कमाया। म्यूनिसिपल स्कूल में मास्टरनी हो गई। अपनी शक्ति पर दीदी जितना आगे बढ़ सकती थी, बढ़ गई। फिर भी दीदी अपने को सुख न दे सकी, शांति न पा सकी।

दीदी को इसकी झुँझलाहट है। सैकड़ों बुखार इसी न खत्म होने वाली झुँझलाहट का सहारा लेकर अमरबेल-से बढ़ते हैं। मन की उमंग, जीवन का रस सूखता गया, सूखता गया। वही सूनापन दीदी को खाए डालता है। उसी की खीज है, उसी की आग है, जो दीदी को किसी करवट में भी चैन नहीं लेने देती।

दीदी अपने-आप के लिए एक सजा बन गई हैं। दीदी अपने से नफरत करती हैं। वह अपने-आप से बचती है। वह सारी दुनिया से बचकर चलती है। उन्हें सारी दुनिया से नफरत है। नफरत को पनाह मिलती है खुदपस्ती में और उसकी भी एक हद है। लेकिन इसके लिए दीदी क्या करें कि वह बेसाख्ता उस हद तक बाहर गुजर जाती हैं। मन के सपने सन्निपात की तरह बातों में उबल पड़ते। क्या उन्हें सुख पाने का अधिकार नहीं? क्या उन्हें किसी की छाया पाने का अधिकार नहीं? क्या उन्हें पुरुष पाने का अधिकार नहीं? उनमें कौन-सी कमी है? रूप? मगर गुण तो है। चरित्र है। वैसे दीदी अपने को देखने-सुनने में भी किसी से कम कर नहीं मानती। हर एक के नाक-नक़्श, बोल-चाल में खोट निकालती हैं - किसी को भी नहीं छोड़ती। तब फिर क्यों उन्हें किसी का प्यार नहीं मिलता? किसी पर अधिकार क्यों नहीं मिलता?

वह अपना अधिकार लेगी। उन्हें पति चाहिए - कुछ अफसर, आई.सी.एस. जैसा, न हो तो डॉक्टर ही चलेगा। मगर बँगला, कार, रेफ्रीजिरेटर, रेडियो और टेलीफोन होना निहायत जरूरी है। वह पति के साथ हवाई जहाज पर उड़ा करे, सभा-सोसायटियों में लेक्चर दिया करे - यही सब जो आज की दुनिया में एक शानदार, इज्जतदार, बड़े आदमी कहलाने की इच्छा रखने वाले के मन में होता है, वही दीदी के मन में भी हैं। 'कुछ-कुछ' में उनके सपने 'बहुत-कुछ' हो जाते हैं, और बहुत-कुछ का अंत नहीं। अधिकारों और आजादी की अंत नहीं। जीवन मृगजल की तरह भागता चला-बेतहाशा, बेपनाह! कोई भी हो, उससे क्या? कल्पना का सतीत्व तो कभी भंग होता नहीं - क्योंकि दुनिया किसी के मन की क्या जान सकती है? और तब-वह गंगा की तरह निर्मल है, यह दुनिया को दिखाई देती है, इसके लिए दीदी को सब से मान मिलता है।

दीदी अपने तन से, अपनी सूरत से नफरत करती थी। जितना नफरत करती, उतना ही उसे सजाने-सँवारने में, किसी तरह से प्यार के काबिल बनाने में उनका ध्यान जाता। सादगी इज्जत की निशानी है। इसीलिए दीदी बड़ी सादगी के साथ अपने को

सजाती थी। कपड़ा साफ और उजला रहे, जरूरत के वक्त दिन में दो बार बदल लेती थी। मुँह और माँग चमकती रहे, चाहे दिन में बार-बार कंघे-शीशे के सामने जाना पड़ते।

दीदी पलंग से उठी। स्टूल से लैंप उठाकर सिंगारदान की मेज पर लाई और अपने को निहारने लगी। जुड़ा खोल डाला। तारा के कमरे में जाने से पहले भी दीदी सिंगारदान की मेज पर ही थी। दीदी ने कंघा हाथ में उठाया और गुनगुनाने लगी, 'मोहब्बत कर के भी देखा, मोहब्बत में भी धोखा है।

तारा के मास्टननी बनने के बाद तारा की तरफ से ग्रामोफोन के रिकार्डों की फरमाइश दीदी ही किया करती, महीने में दो बार कैप्टेन वर्मा का चपरासी हाजिरी बजा आता था। तारा के साथ रहते हुए उन्हें करीब-करीब वही मान-सम्मान, सुख भोग मिलता था, जो तारा को मिलता था। तारा रानी की मास्टरनी की बड़ी आवभगत थी और उस आवभगत के साथ दीदी तारा के रोमांस में शरीक थी। दीदी तारा के लिए प्रेम के खत लिखती थी। तारा के पति से पाए गए प्रेम पत्र दीदी अपने हाथ में लेकर पढ़ती थी, तारा उनके कंधे से लगी हुई सुना करती थी। दीदी तारा के शरीक थी। इसके बाद खुद भी कर्नल तिवारी से खत-किताबत का सिलसिला जारी किया। तारा की तरक्की की रिपोर्ट अँग्रेजी में भेजने लगी। कर्नल ने अपने खतों में इनके काम को सराहा, पत्नी की सहेली के नाते कुछ अपनापन भी दिया - दीदी हवा में गाँठें बाँधने लगी।

एक बार गाँव की छोटी लड़कियों को पढ़ाने का काम तारा के जिम्मे सौंपने के लिए दीदी ने कर्नल से इजाजत माँगी। उन्होंने अपनापन जताने की नीयत से यह भी लिखा कि वह तारा से खूब काम लेना चाहती हैं, जिससे उसमें जिम्मेदारी की भावना बढ़े। तुरंत कर्नल का जवाब आया कि हर काम में मिसेज तिवारी की सेहत और खुशी का पहले ध्यान रखा जाएँ।

दीदी के कलेजे में आरी चल गई। तब से गुनगुनाने का जी चाहने पर गाया करती 'मोहब्बत कर के भी देखा...।' फिर इसके बाद जब तारा ने अपने पति के पत्रों पर से दीदी का अधिकार हटा लिया तो वह सहसा अपने को बेआसरा महसूस करने लगी। दोनों के बीच वक्त अकेला गुजरने लगा। इसी अकेलेपन में दीदी को दो-दो तीन-तीन बार बाल सँवारने की आदत पड़ गई। तारा का ग्रामोफोन अपने कमरे में लाकर कभी घंटों अकेली बैठी-बैठी रिकार्ड बजाया करती।

दीदी हारने लगी, खीझने लगी और तड़पकर अपनी स्थिति को सँभालने लगी। वह अपने शहर और पढ़े-लिखेपन के बल पर दंभ और चतुराई के साथ तारा पर हावी होने की कोशिश करने लगी।

तब से दोनों की नजरों में जो काट आई थी, उससे दुनियादारी की नजर में तो कोई खास भेद न पड़ा, मगर उनके दिलों पर एक गहरा पर्दा जरूर पड़ गया।

छह रोज पहले कर्नल तिवारी के आने की खबर से दीदी तिलमिला गईं। उन्हें इस बात का डर और विश्वास हो गया कि पति के आते ही तारा उन्हें नौकरी से बर्खास्त कर देगी।

यह शक रह-रहकर तूफान उठाने लगा। उनकी हिफाजत, चैन-आराम और पेट की समस्या को सुलझाने या उलझा देने की शक्ति भी किसी दूसरी स्त्री के हाथ में है, यह खयाल दीदी की जलन को चैन न लेने देता था। अपनी इस बेबसी से वह नफरत करती थी, और इसीलिए वह तारा से नफरत करती थी। उन्हें अपने ऊपर भी झुँझलाहट थी कि क्यों उन्होंने एक झूठे मनबहलाव को अपना सहारा बनाया।

मगर क्या उन्हें प्रेम करने का हक नहीं? तकदीर की सिफारिश के जोर पर बेवकूफियों और निकम्मेपन के इस बंडल, तारा को तो मान-सम्मान, रुपया-रुतबा, सामाजिक हिफाजत-सब कुछ मिल जाए और उन्हें जीवन भर के लिए खाली अशांति? यह कहाँ का न्याय है? अपनी शक्ति और काबलियत पर जिंदगी से इतनी बहादुरी के साथ मोर्चा लेने के बावजूद उनकी रोटी और दैनिक जीवन की जरूरतें तक दूसरों की मर्जी की मुहर लगे बिना उन्हें मयस्सर न हो? इसे वह कैसे बर्दाश्त कर ले?

गिरे हुए दूध पर चौका लगाने की जिद ठानकर दीदी ने तारा से छेड़ लेनी शुरू की। उसके हर काम में, हर बात पर दीदी एक न चिप्पी जरूर लगाने लगी, 'साजन आएँगे, देखेंगे कि उनकी देहातिन जूलियट शहर के साबुन से रगड़-रगड़ नहाने के बाद भी गाँव की बोसदगी से बसी हुई हैं।' तारा के पति आ रहे हैं, इस खयाल को उन्होंने तारा का सबसे बड़ा डर बना दिया। हर सेकंड जाता और तारा की चिंता दूनी कर जाता। हँसी और कहकहों की दीवार उठाकर दीदी दिन-रात को छिपी मार मारने लगी। तारा कभी सँभल जाती, कभी लड़खड़ाती और कभी मुकाबला करते-करते थक जाती। दीदी हर वक्त तारा के चेहरे पर अपनी दवा का असर देखा करती। उसे देखकर खुशी दीदी के कलेजे में जहर बुझी छुरी-सी उतरती चली जाती। इस तरह वह कर्नल तिवारी के खत से बदला ले रही थी।

दीदी अपनी हेकड़ी से तारा को यह जताती कि उनकी गुण-विद्या का तेज तारा के रूप और तकदीर, दोनों से बड़ा है और उनका जन्मसिद्ध अधिकार है कि सुहाग के चुनाव में वह भी उम्मीदवारी करें। इशारे-इशारे में एक दिन उन्होंने तारा को एक नए तर्क से चौंका दिया कि वे तारा-कर्नल के विवाह को विवाह ही नहीं मानती। शादी उम्र भर की साझेदारी है। इतनी बड़ी उम्र में छोटी उम्र की युवती से शादी करना और फिर बिना लियाकत देखे ही टीका चढ़ा देना बुद्धि के कानून से गलत है और गलती का फल एक न एक दिन जरूर ही मिलता है।

दीदी खिलखिलाकर हँसती हैं, मजाक करती हैं, ताने कसती हैं और सिंगार करती हैं। दीदी गाती हैं, 'मुहब्बत कर के भी देखा...।' और दीदी तारा को बार-बार डसकर उलट-उलट जाती हैं। उन्हें कल नहीं पड़ती।

सिंगारदान के आईने से ढोलक बजाकर अपनी खूबसूरती का सर्टिफिकेट ले लेने के बाद दीदी उठीं। कमरे में इधर-उधर टहलती रहीं।

अपनी किताबों और नोट बुकों में उन्हें 'नवजीवन' का वह पुराना अंक मिल गया, जिसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू से हाथ मिलाते हुए कर्नल तिवारी की तसवीर छपी थी। दीदी ने उसे उठा लिया। देखती रही। पलंग पर आकर लेट गई और टकटकी बाँधकर देखती रही। फिर नींद आ गई।

दीदी को अपने कमरे से चलने के लिए कहने के बाद तारा पछताई। लाख बुराई होने पर भी उसे दीदी से बिगाड़ नहीं करना चाहिए था। मगर उसके पति पर कोई दूसरी स्त्री अपना झूठा अधिकार जमाना चाहे और वह चुपचाप रहे, यह बात भी अब तारा की सहन-शक्ति से बाहर होती चली जा रही थी। अपने अमंगल से वह इस हद तक डर गई कि नफरत फूट पड़ी। वह दीदी को कुचल डालना चाहती थी।

वह चाहती थी कि दीदी को उसी दम बरखास्त कर दिया जाएँ। यह उसके बस में न था। इसलिए वह सोचती थी कि पति के आने के बाद वह पहले दीदी को ही निकलावाकर बाहर करेंगी।

यही दूसरी उलझन उसका रास्ता रोकती थी। उसे नहीं मालूम कि उसके पति उसके हो भी सकेंगे या नहीं। उसे नहीं मालूम कि वह अपने पति को क्यों कर अपना बनाए। अम्मा उसे पाउडर और कलाई की घड़ी लगा लेने के लिए जोर दे गई। दद्दू ने भी अम्मा से कहलाया है कि तारो उनके आगे नीकी-नीकी रहे। सातों विलायत घूमे, सातों इलम छाने हैं। कोई बात उनकी मर्जी से हेठी न हो। तारा सोचती कि कलाई की घड़ी,

साड़ी-पाउडर से क्या वे राजी हो जाएँगे? और जो उनकी यही चाहना रही तो फिर उसके भाग क्यों खुले? शहरों में एक से एक पढ़ी-लिखी और फैशनवालियाँ पड़ी हैं। विलायत में तो परियों-जैसी मेमें उन्हें मिल जाती। तब तारा से उन्हें क्या चाहिए?

तारा मन ही मन घुट रही थी। उसकी रक्षा के लिए कोई उपाय नहीं। घड़ी में वक्त आगे खिसकता जा रहा हैं। हद, घंटे-डेढ़-घंटे में उसके पति आ जाएँगे। और वह अभी तैयार भी तैयार भी नहीं हुई। उसे समझ ही नहीं पड़ता कि वह कैसे तैयार हो? उसकी सलाहकार, मददगार, दीदी भी उसकी दुश्मन हो बैठी है। धमकियाँ देती हैं कि यह अनमेल विवाह दुखों का घर बनेगा। उसका सुहाग मुलम्मे की तरह नकली साबित होगा और दीदी के कहे मुताबिक यह बातें सच होंगी ही, क्योंकि वह निकम्मी है, गँवार-देहातिन है, वह अपने पति को रिझाना नहीं जानती।

तब क्या उसका सारा किया-धरा, सारी मेहनत और लगन, उसके अरमान, सपने - सब घंटे भर बाद धूल में मिल जाएँगे?

काश कि उसे अब भी मालूम पड़ जाएँ कि उसमें क्या कमी है? क्यों वह अपने पति को अपना नहीं बना सकती?

लेकिन यह बताए कौन? उसे दीदी पर गुस्सा आ गया। अपने ऊपर गुस्सा आ गया। क्यों उसने दीदी से खुल्लमखुल्ला रार मोल ली? हालाँकि उसने दीदी को चले जाने के सिवा और कुछ भी नहीं कहा और इतना कह देना कोई गुनाह नहीं है। दीदी तो उसे पति को छीनने की धमकी तक दे चुकी हैं। इस बातों के मुकाबले में तो तारा ने कोई भी सख्त बात नहीं कही।

अँधेरी रात को बरसाती नदी में डूबते हुए प्राणी की तरह तारा लाचार थी। किनारे पर आ जाने के लिए उसने कितनी कोशिश की, मगर हर बात अँधेरे में डुबाव की तरफ ही ज्यादा बढ़ गई। तारा इस वक्त भी बचना चाहती है। इस वक्त तो तारा खासतौर से बचना ही चाहती है। उसे बना ही होगा। उसे अपने पति की रानी बनना ही होगा।

इच्छा की तेजी और मन की बेबसी से उनके रोएँ भर आए। माथे पर पसीने की बूँदें और आँखों में आँसू झलझला आए। एक भरी-भरी ठंडी साँस छोड़ती हुई वह पागल की तरह अपने-आप ही कह उठी, "नहीं।"

नहीं, वह इस समय रोना नहीं चाहती। अपने पति के आने की शुभ घड़ी में वह कोई अमंगल नहीं चाहती, न अपना, न विराना।

तेजी के साथ उसके दिमाग में आया कि वह चलकर दीदी से माफी माँगे। शायद उसक माफी माँगने से दीदी को भी अपनी गलती का ध्यान हो जाएँ और फिर वह इस तरह आड़े न आएँ, उसे इस तरह तबाह न करें।

पति के मंगल और अपनी दीनता के भार से दबी हुई, मन की हिचक और नामुरादी के साथ-साथ तारा उठी।

तारा जब दीदी के कमरे में पहुँची तो वह अखबार से मुँह ढाँके सो रही थी। लैंप सिंगारदान की मेज पर रखा था और दीदी के पलंग पर काफी अँधेरा हो चुका था। दबे पाँव तारा बढ़ने लगी। लैंप उठाकर पलंग के पासवाले स्टूल पर रखा, फिर धीरे से दीदी के पलंग पर बैठ गई।

तारा ने दीदी के चेहरे से अखबार हटाया। ऐसा मालूम होता था कि जैसे वह देर से सो रही हैं।

अखबार को देखकर तारा मन ही मन तड़प उठी। उसने दीदी की तरफ देखा। दीदी का सिंगार अपनी ताजगी की गवाही दे रहा है। तारा अपनी सारी चतुराई भूलकर सिर से पैर तक आग हो गई। अब तक वह इस मामले को हद से ज्यादा बहाली देती आई है, लेकिन उसके पति के आने के कुछ देर पहले तक उसके सुहाग की राह में कोई यों धरना देके बैठ जाएँ, इसे तारा किसी भी सूरत से बर्दाश्त नहीं कर सकती। मगर उनके आने के दिन वह कोई अमंगल नहीं करना चाहती। अपने गुस्से पर काबू पाने के लिए उसने बड़ी गंभीरता से काम लिया। उसके जी में आया कि उठकर चली जाए। पर बिना दीदी को जताए हुए जाना भी उसे अच्छा नहीं लगा। वह दीदी से सामना करके ही अपना अखबार ले जाना चाहती थी और उसने दीदी का हाथ झिंझोड़ा।

दीदी की नींद खुल गई। सामने थी तारा।

तारा ने छूटते ही कहा - "जिसकी राह देखी जाती है, उसके सपने नहीं देखे जाते, दीदी। उठो, हाथ-मुँह धो, एक बार और सिंगार कर डालो।" कहकर तारा मुस्करा दी।

दीदी को चौंकाने के लिए यह सबसे बड़ा तमाचा था। भीतरी मार की तिलमिलाहट के साथ अब तानों के तीर सँभालती है और वह भी खास तौर से उन पर।

दीदी ने तारा के हाथ में अखबार देखा। मन हारने लगा, लेकिन अपनी बेशर्मी को जिद के साथ निभाते हुए वह उठ बैठी। दोनों हाथ सिर के बालों पर फेरते हुए जवाब दिया -

"मेरे पास सिंगार कहाँ? जिनके पास तरह-तरह की साड़ियाँ हो, सेट के सेट गहने हों, वे करें। मैं मास्टरनी हूँ, मेरा सिंगार विद्या है।"

तारा दीदी के अचरज और गुस्से को और भी बढ़ाते हुए बोली - "विद्या जिनके तन का सिंगार हो, उनका मन तो कोरा रहेगा ही। कहते हैं, रावण भी बड़ा पंडित था, दूसरे की पत्नी को भगा ले गया था।"

लैंप की मद्धिम रोशनी में तारा को दीदी का अकबकाया हुआ चेहरा अच्छा लगा। उसे अपने आप पर घमंड हुआ और उसी जीत के साथ उसने उठना चाहा।

दीदी ने भार से हल्के होते हुए पूछा - "जा रही हो?"

तारा इस पर जम गई। विचार और मुँह की बात तुरंत बदलते हुए तारा ने हँसकर कहा - "मैं कहाँ जाऊँगी भला? स्टूल सरकाने जा रही हूँ। तेज रोशनी में अखबार पढ़ूँगी।"

ऊपर से अपने को सँभालते हुए रहने पर भी तारा मन ही मन में बेकाबू हुई जा रही थी। दीदी पर अपनी जलन निकालते हुए वह अपने-आप से बेबस थी। दिमाग तीर की तरह छूट रहा था।

दीदी तारा के इस नए रुख को देखकर डर गई थी। वह आखिर इस वक्त क्यों आई है? उसकी नजरें साफ नहीं। उनकी मुस्कराहट जहर की बुझी हुई है। उसकी हर बात एक ठने हुए कदम की तरह उठती है। दीदी यों अचानक अपने घिर जाने की उम्मीद नहीं करती थी, वह भी खासतौर से तारा की तरफ से। गाय कसाई की छुरी पर हमला कर बैठे, यह एक अनहोनी-सी बात थी। दीदी किसी तरह इस मुसीबत से छुटकारा पाना चाहती थी। तारा का सामना करते हुए दीदी को एक अजीब किस्म की कमजोरी का अनुभव हो रहा था। यह उनकी आदत और मर्जी के खिलाफ था। जिस समस्या का दीदी कभी अपने सपनों तक में इतनी गंभीरता से सामना करने को तैयार नहीं हुई थी, उसके लिए वह जवाब क्यों दें? और बात का सामना भी क्यों कर करें?

दीदी ने फौरन हँसकर परिस्थिति को हल्का बनाया। वह बोली - "अरे, अब जिन्हें हरदम अपनी नजरों के इशारे पर सलाम करते देखोगी, उन्हें अखबारों में क्या देखना!"

दीदी की खुशामद को तारा पहचान गई, मगर जी का तनाव अभी भी कम नहीं हुआ था। जीत पर जीत का जोम बढ़ा। यह उस डर का जवाब था, जो दीदी की छाया बनकर आठ पहर उसे घेरे रहता था। तारा ने लैंप की बत्ती जरा और ऊँची की और अखबार

सामने फैलाकर उसमें नजर गड़ाते हुए हुए कहा - "सलाम गैर से लिए जाते हैं, अपनों से कोई इसकी इच्छा नहीं रखता।"

कहकर तारा अखबार पढ़ने लगी। दीदी उसकी ओर देखने लगी। बात दोनों तरफ से खत्म हो गई।

दीदी बैठी रही, फिर धीरे-धीरे करीब खिसक आई और तारा के साथ अखबार देखने लगी।

एक शीर्षक था, 'कामंस सभा में श्रीमती लीमैनिंग रो पड़ी।'

दीदी पढ़ने लगी - "आज रात पार्लमेंट की एक सदस्या श्रीमती लीमैनिंग कामंस सभा में पुरुषों द्वारा लड़ाई के मसले पर बहस किए जाने पर रो पड़ीं।

उन्होंने विश्व शांति की हिफाजत के लिए स्त्रियों के कार्यक्रम का ब्यौरा देते हुए कहा कि शांति का काम पुरुष नहीं कर सकते। यह अब स्त्रियों की जिम्मेदारी है। अतएव मैं एक अंतर्राष्ट्रीय-महिला-शांति-आंदोलन का संगठन करने जा रही हूँ।"

दीदी को इस खबर से बात का सहारा मिला। तारा के एकाएक अधिकार-तेज में आ जाने से दीदी चार नजरों में गुनहगार साबित हो गई थी। वह अपने-आप में बड़ा बेपनाह महसूस कर रही थी। अपने बीच की लड़ाई पर शांति की खबर का गिलाफ चढ़ाते हुए उन्होंने कहा - "सच है, लड़ाई पुरुष ही करते हैं। शांति का काम औरतें ही कर सकती हैं।"

तारा बोली - "किसी का ठेका नहीं है। लड़ाई वही करता है, जो झूठा घमंड करता है - चाहे औरत हो या मरद।"

दीदी खिसियाते हुए बोलीं - "मैं दुनिया की बात करती हूँ। अखबार उठाओ, जहाँ देखो वही लड़ाई तबाही... यह भी भला कोई जीवन है!"

तारा ने सिर उठाकर दीदी की ओर देखते हुए तमक के साथ जवाब दिया - "यही बात जब मैं कहती थी, तब तुम राष्ट्र और सिद्धांत और न जाने क्या-क्या बालिस्टरी करके लड़ाई का पक्ष लेती थी।"

दीदी ने फिर मात खाई। दीदी तारा से सहमी जा रही थी। एक हद से ज्यादा उनके मिजाज के लिए यह कतई नागवार था। उनमें तड़प आई, बोली - "हाँ, मैं राष्ट्र और सिद्धांत के नाम पर अब भी लड़ाई का पक्ष लेती हूँ। दुनिया के समाज में अभी भी

जंगली आदतों का जोम बढ़ा-चढ़ा है। पशुबल बुद्धि और सच्चाई, नीति वगैरह को नहीं मानता। इसलिए फौज की शक्ति से उसे खत्म करना ही होगा।"

"तो यह पशुबल क्यों बढ़ा है?" तारा ने पूछा - "अब तो दुनिया में इतने पढ़े-लिखे विद्वान लोग हैं, उनके हाथ सारी दुनिया की बागडोर है। फिर भी पशुबल कैसे बच जाता है?"

दीदी बोली - "दुनिया में अनपढ़-गँवारों की गिनती के सामने पढ़े-लिखे, सभ्य बहुत कम लोग हैं।"

तारा तड़पकर बोली - "और जो पढ़े-लिखें सभ्य लोग हैं, वे ही क्या सभ्यता दिखला रहे हैं? पराया हक डकार जाना, जब रामगुहार मचाओ तो लाल-पीली आँखें दिखाकर कहना कि हम पढ़े-लिखे सभ्य हैं। वारी जाऊँ तुम्हारी इस पढ़ी-लिखी सभ्यता पर। झूठा घमंड करना, फिर अपने मगज में से लड़ाई के तार निकालना। ऊपर से शांति की बात चलाना। उँह!"

तारा अखबार उठाते हुए उठ खड़ी हुई।

दीदी अपने-आप पर झुँझला उठी। गुनाह क्या इतना बड़ा बोझ है कि उम्र-भर को सिर ही सीधा न कर सके? किसी सूरत से बात का निकास होना चाहिए।

शेड पड़ा हुआ लैंप दोनों के बीच में था। धीमे उजाले में दोनों एक-दूसरे की निगाहों को तेजी से पहचान रही थी।

दीदी स्टूल के सामने से घूमकर आगे बढ़ी, तारा का हाथ पकड़कर खड़ी हो गई। कहा, "सुनो तारा रानी! हमारे तुम्हारे बीच में एक गलतफहमी खेल रही है। मैं अपनी हालत साफ कर दूँ। मैं अपनी कमजोरी से परेशान हूँ। इस बात को आज से पहले साफतौर से मैं नही मानती थी। मैं मानती थी कि मेरे जीवन में अभाव हैं, इन अभावों की जानकारी से कतरा जाने के लिए मैं अपने मन में बहुत से तर्क बना लिया करती थी! मैं सच को जानती थी। उसके बारे में मुझे कभी एक सेकेंड के लिए भी शक नहीं था। मगर ऊपरी तौर पर एक बहक, झक सवार हो गई थी। मैंने तुम्हें बहुत तकलीफ दी है। मेरी नासमझी-लापरवाही गुनहगार है। आज से तुम मेरे बारे में अपना दिल साफ रख सकती हो।"

तारा दीदी को देखती रही। सीधी लकीर की तरह दीदी बोलती चली गई। तारा चुप रही।

कहकर दीदी भी चुप हो रहीं।

तारा ने पूछा, "सच मानूँ?"

"तुम्हारी मर्जी।" दीदी ने तारा का हाथ धीरे से छोड़ दिया।

"दीदी, आज से तुम मेरी जान से बढ़कर हो गई।"

वह सचमुच बहुत सुखी हो गई। उसके पति के आने के दिन कोई अमंगल नहीं हुआ।

काले-सफेद बादलों और तारों की चमक लिए हुए रात आ रही थी। दोनों तरफ काले-पेड़ों की कतार लिए कँकरीली, गड्ढों-खाँचों से भरी सड़क पर दूर से आती हुई मोटर की रोशनी फिसलने लगी। खेतों में भरे हुए पानी पर, इधर-उधर फैले हुए दरख्तों पर, तारों की साँवली रोशनी, मौसम में उमस होते हुए भी ठंड लगती थी। साँपों की तेज-मंद सीटियाँ, छोटे-बड़े मेंढकों की टर्राहट और तरह-तरह के झींगुरों-झिल्लियों की झनकारों से सन्नाटे में समा बँध रहा था।

कार सिमरौली की तरफ बढ़ रही थी। कार एक छोटी पुलिया के ऊपर से होकर गुजरी। सामने खेतों में भरे हुए पानी पर शुक्र तारे की रोशनी चमक रही थी। आसपास के बादलों के बीच में साफ नीले आसमान का टुकड़ा जगमगा रहा था। ये तारे जमीन के जर्रे-जर्रे की किस्मत के ठेकेदार माने जाते हैं। मगर दुनिया के कानून से ये तारे बिक चुके हैं। जिसकी जमीन होती है, उसी का आसमान भी माना जाता है और जमीन का जर्रा-जर्रा इस दुनिया के कानून से सदा के लिए सट्टे के बाजारों में बिक चुका है।

पेड़ के पास चबूतरे पर बने एक छोटे-से मंदिर में जलता हुआ दीया अँधेरी रात को अपनी तरफ खींच रहा था। सामने किसी पुराने जमींदार की गढ़ी के खंडहर रात की तारीकी को ओढ़े हुए खड़े थे। किसी वक्त में इन खंडहरों के मालिक ही जमीन के मालिक होते थे और आसमान के सितारे आमतौर पर उनके मददगार रहते थे। इन खंडहरों के महलों में भी कभी झाड़फानूसों की रोशनी में इत्र महके हैं और शराब से फर्श धुले हैं। इन खंडहरों की हवा में कभी श्याम कल्याण, शुद्ध कल्याण, भैरव, भैरवी, ध्रुपद, धमार, ठुमरी, टप्पे, दादरे, गतों, गजलों के बोल बसे हैं। कामिनियों के घुँघरुओं की झनकार से जमींदार का महल भर गया, और जमींदार के रुपयों की झनकार से साहूकार की हवेली का तहखाना गूँजने लगा।

पीपल की जड़ों की तरह अंदर ही अंदर हवेली के तहखाने भी फैलते-फैलते हर खेत-खलिहान और उन्हें जीतने-बोने वाले मेहनतकश किसानों की जिंदगी पर

पुश्त-दर-पुश्त के करार के साथ छा गए। साँप अपने लिए बाँबी नहीं खोदता, वह चूहों के बिलों में रहता है और उन्हें मारकर अपना पेट पालता है।

शहर की कार गाँव में बढ़ रही थी। गाँव की मिट्टी, गाँव की मशक्कत और गाँव का अन्न-धान्य ही शहर में जाकर मशीन के पुर्जे बना, पुर्जो के कारखाने बना, मिल बना, बैंक बना, राजदरबार बना, दफ्तर-कचहरी बना-और छकड़ों कानूनों की रूह से अपने जिस्म की हिफाजत और रोनक बढ़ाकर वही गाँव की मशक्कत मोटरकार के रूप में जमीन को रौंदती हुई बढ़ती जा रही थी। मोटरकार किसी भी कंपनी की बनी हो, उसका मालिक सट्टे का बाजार है। मोटर जिस किसी ने खरीदी हो, वह सट्टा बाजार का जरखरीद गुलाम है। सट्टे से बैंक चलते हैं, बैंकों से मिलें चलती हैं, मिलों से राजनीति और राजनीति से सारी दुनिया चलती है। इस चक्कर में जिंदगी कोल्हू के बैल की तरह आँखों में पट्टी बाँधे घूम रही है। उसे यह नहीं कि वह अपने चलने का मकसद पूछे, मंजिले-मकसूद पूछे।

कार तेजी से सिमरोली की तरफ बढ़ी जा रही है। सिमरौली ऊँचे पर, सामने है।

एक छकड़ा जा रहा है। कार की रोशनी में बैल, छकड़े का पटाव, लालटेन, और अंदर दो-चार बच्चे-औरतें झलक गईं...

छकड़ा भी सिमरौली की तरफ जा रहा था। छकड़े से ऊँची टीप लग रही थी -

महँगी के मारे बिरहा बिसरगा -

भूलि गई कजरी कबीर।

देखि के गोरी क उभरा जोबनवाँ,

अब ना उठै करेजवा मा पीर।।

मोटर के हार्न ने गीत को रोक दिया। गाड़ीवान ने मोटर को जगह देने के लिए अपने छकड़े को सड़क के किनारे सरका ले जाने की कोशिश शुरू की। उतने ही समय में कार उसके पास से तेज रफ्तार में गुजरती हुई, चंद की सेकेंडों में छकड़े को पीछे छोड़कर चढ़ाई की तरफ बढ़ गई।

दूर चढ़ाई से देवी के गीतों की आवाज आ रही थी। मोटर का हॉर्न तेजी से बज उठा। दुबारा जोर से किर्र-किर्र हुई।

चढ़ाई पर कुछ औरतें, बच्चे-बच्चियाँ और दो-चार मरद गठरी-मुठरी सँभाले, मोटर की रोशनी से उन लोगों के लिए राह सूझने के बजाए और भी खो गई थी। मोटर के हॉर्नों के बार-बार बजने से उसकी घबराहट और चिल्ल-गुहार को अपनी थाह नहीं मिल रही थी।

चढ़ाई का मामला, ब्रेक लगाना मुश्किल था। कार गरमाई - "ईडियट्स! एक बाजू हो जाओ।"

मोटर कार से दूसरी आवाज आई - "हटो हटो! अरे, एक अलंग हुई जाओ।"

कार बढ़ती ही रही। बटोही घबरा-घुबरू कर, चूहों की तरह जिसे जहाँ जगह मिली, दुबककर खड़े हो गए।

कार उनके बीच से गुजरती हुई चढ़ाई पर चढ़ गई। लालटेनों की रोशनी में देवी माता के दर्शन कर लौटती हुई टोली ने देखा, सुखराम के बड़कऊ खिड़की से मुँह निकाले बैठे थे। जंडैल साब मोटर चला रहे थे और पीछे एक अरदली बैठ था।

बार-बार हॉर्न बजने की आवाज और लोगों के घबराहट में चिल्लाने का शोर बस्ती में परेशानी का बायस हुआ। सुखराम के बैठक में गाँव के सभी लोग बैठे हुए थे। दामाद का इंतजाम हो रहा था।

बाहर पेड़ के चबूतरे के आसपास कुछ लोग खड़े थे, कुछ ऐन चढ़ाई के नुक्कड़ पर खड़े थे। हॉर्न और हंगामा सुनकर सुखराम मिसिर और गाँव के बड़े लोग घबराकर बैठक से बाहर निकले। सामने से कार की रोशनी उन पर पड़ने लगी।

कार रुकी। अर्दली ने फौरन उतरकर साहब के लिए कार का दरवाजा खोला। बड़कऊ उतरकर सकपकाते हुए खड़े हो गए। कर्नल तिवारी ने कार बंद कर चाभियों का गुच्छा जेब में रखा, फिर बाहर आए। सब को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। सुखराम मिसिर दीन भाव से हँसते हुए आगे आए। छुटकऊ ने पैर छुए।

सभी लोग दामाद के लिए फूलहार लाए थो सुखराम ने गोटे का हार मँगवाकर रखा था। हंगामे के कारण सब लोग यों ही बाहर निकल आए थे। जीजा के पैर छूते ही छुटकऊ को गोटे के हार की याद आई। 'अरे, हार।' कहकर वह दौड़ते हुए अंदर भागे। लोगों का ध्यान हार पर गया। हार लाने की घबराहट मची।

सुखराम दामाद के आगे सफाई देने लगे - "चढ़ाई पर सोर भया। आपका हारन सुना, तो हम लोग परान छाती में समेटकर भागे कि ई सुरनाथ...।"

ससुर की बात काटकर दामाद ने कहा - "कोई खास बात नहीं हुई। कुछ लोग मोटर से घबरा गए थे।"

बात बड़कऊ की जबानी मिर्च-बघार के साथ अंदर पहुँची। जीजा कैसे जोर से लोगों पर गरमाए। कैसे झपाटे के साथ उन्होंने बिरेक पर हाथ मारा। गुस्से के मारे जीजा का चेहरा लाल-लाल हो गया। फिर कैसे खुद बड़कऊ ने लोगों को डाँटा। यह सब सुनकर मलकिन घबरा गई - कही कोई चूक न रह जाएँ। यह तारा के पास दौड़ी गई।

तारा सादा ब्लाउज-साड़ी पहने हुए थी। गहने भी वही रोज के हीरे की तरकियाँ और नाक की कील, गले में सोने की जंजीर। माँ को देखकर तारा लजा गई। माँ की बातों पर तारा ने कहा - "अम्मा, तुम फिकिर न करो। सब ठीक हो जाएगा।"

अर्दली साहब का सूटकेस और होल्डाल लेकर आया। बड़कऊ अटैची और जीजा की तमगे लगी फौजी टोपी लिए हुए आए। सामान रखकर सलाम किया।

तारा ने अर्दली को सामान रखने के लिए जगह बताई और बड़कऊ के हाथ से टोपी और अटैची ले ली। बड़कऊ जैसी हड़बड़ में ऊपर आए थे, वैसे ही नीचे भागे। तारा ने अटैची टेबल पर रखी और कबर्ड खोलकर टोपी अंदर रखते हुए अर्दली से पूछा - "तुम्हारा नाम क्या है?"

अर्दली ने अदब से कहा - "शंकर, मेमसाब।"

'मेमसाब बनकर तारा को झेंप महसूस हुई, अजीब-सा लगा। लेकिन ऊपरी तौर पर अपने को सँभालते हुए उसने पूछा - "तुम्हारे साहब क्या इस बखत चाय पीते हैं।"

शंकर अर्दली ने अदब से कहा - "चाय तो वो साम को ही ले चुके हैं मेमसाब-कप्तान साहब की कोठी पर। इस बखत साब डिनर खाते हैं।"

"अच्छा!" तारा ने कहा, फिर पूछा - "घर में पहनने के कपड़े उनके इस संदूक में हैं?"

"जी हाँ।"

तारा सूटकेस की तरफ बढ़ी, कहा - "इसमें ताला बंद है।"

"चाबियाँ साहब के पास हैं।"

"उनसे माँग लाओ।" कहने को तो तारा कह गई, साथ ही उसके सारे बदन में एक सनसनी-सी दौड़ गई-वो अपने मन में क्या सोचेंगे तारा के मन में एक ऐसी हलचल मच गई, जिसमें संकोच और अपनापन दोनों ही उसके जोश को बरबस अपनी तरफ खींच रहे थे। तभी दीदी ने कमरे में कदम रखा और शंकर 'अबी लाया मेमसाब' कहकर नीचे चला गया।

दीदी 'मेमसाब' पर मुस्कराई। तारा ने मुस्कराते हुए लाजभरी आँखों को दूसरी ओर फेर लिया। दोनों ही बिगड़ी को बनाने की चेतना लिए हुए थी। घाव अभी हरे थे और दोनों अपनी-अपनी सम्हाल रखते हुए एक-दूसरे से बरताव कर रही थी। दीदी ने पूछा - "क्या मँगाया है मेमसाब?"

जी की ललक को बनावटी गुस्से की आड़ में करके तारा ने कहा - "देखो दीदी! अच्छी बात नहीं।"

"क्या अच्छी बात नहीं साहब?"

नई आवाज पर दोनों चौंक गई।

दीदी ने तुरंत हाथ जोड़कर कहा, "स्वागतम!"

तारा ने भी हाथ उठाए। मुख पर घूँघट न होते हुए भी नजरों में लाज के अनगिनत पर्दे पड़े जा रहे थे।

कर्नल तिवारी ने तारा को नजर भरकर देखा और रूहानी नशे में मदमाते हो, मुस्कराकर हाथ बढ़ाते हुए बोले - "ये लीजिए अपनी अमानत।"

उनके हाथ में तालियों का गुच्छा था। तारा एक डग ठिठकी, फिर पति के हाथ से गुच्छा लेकर सूटकेस की तरफ बढ़ गई।

तारा की ओर टकटकी बाँधकर लगी हुई कर्नल तिवारी की चाह भरी आँखों को दीदी कनखियों से छिप-छिपकर देखती रहीं।

एक दृश्य के तौर पर दीदी के लिए यह बड़ा ही मनभावना था। दीदी को अपने जीवन में पहली बार ही स्त्री-पुरुष के भावों की ऐसी तन्मयता, ऐसी सरल धारा का स्वरूप देखने

को मिला। इस दृश्य से उनकी कल्पना भर गई। ऊपरी तौर पर सारा व्यवहार निभाते हुए भी उनका मन उसी में रमा रहा।

दो पहर रात बीतने पर अँधेरे पाख का चाँद ऊपर आया - छत पर समाधि-सी लगाए बैठी हुई दीदी को तसल्ली देने के लिए। दो कमरों की दरमियानी छत पर दीदी बैठी थी। तारा के कमरे के दरवाजे बंद थे। सारा आलम खामोश था - सिर्फ दीदी के बेकरार दिल को छोड़कर।

दीदी को इस वक्त न किसी से शिकायत थी और न जलन। उन्हें अपने फूटे नसीब पर बड़ी करुणा आ रही थी।

तारा उनकी निगाहों में आज जितनी ऊँची उठती थी, उतना ही वह अपने लिए गिरावट महसूस करती थी। उन्होंने आज तारा में जो चमत्कार-सा परिवर्तन पाया था, उससे दीदी में नफरत या गुस्सा नहीं, बल्कि भय भरी श्रद्धा जागी थी। तारा में इस परिवर्तन का कारण वह प्रेम और अधिकार की तीव्र भावना मानती थी। अपने साथ तारा की बातों में जो तेजी दीदी ने शाम को पाई थी, वही रात में बड़े सधाव और शक्ति के साथ तब देखने को मिली, जब दीदी कर्नल से चढ़ाई के हंगामे को लेकर राजनीति पर बातें करने लगी थी। कर्नल साहब को शिकायत थी कि हिंदुस्तान के लोग अभी मोटर से घबरा जाने की हद तक पिछड़े हुए हैं। दीदी को भी कर्नल के इस अनुभव से एतराज न था। मगर तारा ने इस सवाल को जिस नजर से देखा, वह सीधी और सच्ची थी। कर्नल और दीदी दोनों को ही यह स्वीकार करना पड़ा। तारा ने बतलाया कि लड़ाई के जमाने से, जब से फौजी लारियाँ इस सड़क पर अंधाधुंध रफ्तार से दौड़ने लगी हैं, कितने ही आदमी और जानवर घात खा चुके हैं। मोटर को देखकर उनकी जान निकल जाती है। बेचारे घबराएँ नहीं तो क्या करें?

तारा ने राजनीति, महँगाई और लड़ाई आदि के चरचे में जो सीधा रुख अख़्तियार किया था, जो सीधी बातें कहीं थी, वह दीदी के दिमाग में भावना की तेजी के साथ चक्कर काट रही थी।

दीदी का मन अपनी पीड़ा से उमड़कर अब जग की पीड़ा में मिल रहा था।

तारा की बातों को ही अपनी अनुभूति का रंग देकर वह सोच रही थी कि जब तक पैसे का बँटवारा ठीक-ठीक न होगा, दुनिया इसी तरह अमीरों और गरीबों में बँटती जाएँगी। अरमानों का अंत नहीं। पैसेवाला चाहता है कि जितनी तेजी के साथ उनका मन सारी दुनिया पर छा जाता है, उतनी ही तेज रफ्तार से वह दुनिया का मालिक हो

जाए। हजार तरकीबों से वह अपनी ताकत बढ़ाता है - पैसे की, ओहदे की ताकत। उस ताकत के जो आत्माभिमान का नाम देकर वह शराफत के साथ अपना गुरूर बढ़ाता है, गुस्सा बढ़ाता है। उसके गुरूर, गुस्से और नफरत की रफ्तार उसके मन की तरह ऊँची और तेज होती जाती है। पूरी ताकत के साथ वह दुनिया से नफरत करता है। वह दाम बढ़ाता है, टैक्स बढ़ाता है, डंडे-गोलियों और बमों की बरसात को और भी तेज करता है।

वह अपनी कौम से नफरत करता है। अपने से छोटे को खा जाने में और बराबरवाले को तबाह कर देने में वह हर वक्त अपना ध्यान जमाए रखता है। इसीलिए दूसरे की तरफ से भी वह चौकन्ना बना रहता है और इसीलिए वह अपने-आप से नफरत करता है। वह जिंदगी से नफरत करता है।

मगर वह जिंदगी से नफरत कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसे जीने से प्यार है। यही उसकी सबसे बड़ी उलझन है। इसी से उसके मन की तेज रफ्तार झकोले खाती है। वह सँभालने की असफल कोशिशें करता है और ज्यों-ज्यों अपने ऊपर से उसका भरोसा उठता जाता है, वह खीझकर अपनी सारी ताकत के साथ उछाल मारता है। वह अपनी झूठी ताकत से जुआ खेलकर जिंदगी को जीतना चहता है।

मगर यह जुआ क्यों? यह जिद क्यों? कुछ के स्वार्थ के लिए दुनिया के अरबों इनसानों के जीवन के साथ जुआ क्यों खेला जाए? वह भी, खास तौर से उस वक्त, जब कि जिंदगी हर तरफ से अपने लिए रास्ते बंद पाकर घुट रही हो। जब सामाजिक जीवन को, मजबूरियों के आगे सिर झुका-झुकाकर आत्माभिमान को खत्म कर डालने के लिए रोज-बरोज दबाया जा रहा है, तब राष्ट्रीयता, अंतरराष्ट्रीयता, आदर्श और सिद्धांत का सत्य और आत्माभिमान-यह सब क्या मजाक है? आत्माभिमान का झूठा घमंड किसलिए होता है?

अपने ही बोझ के सामने आदम का बच्चा आज भुनगा बना जा रहा है। फिर सम्मान किसका रहा? राष्ट्रों का, जनता का या चार राजनीतिज्ञों का, जो किताबी तर्कों की दकियानूस आदत में बँधे हुए, जनता की महानता को अपने कैबिनेट-हॉलों और पार्लमेंट भवनों की विशालता के आगे भूल जाते हैं। जनता उनके लिए चहारदीवारी के अंदर बंद हो जाती है, एक कमरे में सिमट आती है। जनता उनकी जबानों से बँध जाती है। जनता अपने पंचों की मर्जी की गुलाम और अपनी मर्जी की गुनहगार हो जाती है और यह तब तक होता रहेगा, जब तक समाज पर पैसे की हुकूमत किसी भी रूप में रहेगी। इस सत्य से किसी तरह भी आँख नहीं मींची जा सकती। पैसे की झूठी शक्ति,

जब कि सच्ची होने का दावा कर जीवन के सत्य को धोखा दे रही हो, तब सब से पहले उसे तबाह करना ही आज का ऊँचे से ऊँचा आदर्श है, सबसे बड़ा सिद्धांत है।

दीदी में तेजी थी। अपने से निकलकर इनसानियत के उसूलों के सहारे दुनिया पर छा जाने के बाद भी वह तेजी और तड़प अपनी राह न पा सकी। दीदी अब थक चुकी हैं। उन्हें भी अब आराम चाहिए, सुख चाहिए, घर चाहिए।

तारा के कमरे के दरवाजे बंद हैं। दीदी के मन के दरवाजे बंद हैं। तारा के कमरे से रोशनी छनकर दरवाजे के ऊपर बनी हुई बेलदार जाली से बाहर आई। दीदी हड़बड़ाकर अपने कमरे की तरफ भागी।

लैंप के उजाले में घड़ी देखते हुए तारा ने कहा - "ठीक-ठीक, तीन बजकर इक्कीस मिनट। अभी अगर शर्त बद लेते तो मैं तुम्हें हरा देती।"

नाज की नजर से तारा ने अपने पति को देखा।

पलंग पर उठकर बैठते हुए कर्नल तिवारी ने मुस्कराकर कहा - "तुमसे हारने में ही मुझे जीत मिलती है।"

लैंप की रोशनी में तारा के मुँह पर सुहाग के सुख, संतोष और अभिमान की गंभीरता देखकर कर्नल को अपना जीवन भरा-भरा लगा। उन पर मादकता छा गई। पलंग से उठे, तारा के पास आए। उसकी ठोढ़ी को चुटकी से उठाते हुए कहा - "रानी, तुम सचमुच मेरी रानी साबित हुई। मुझे कभी भी इतनी उम्मीद न थी। आज तुमसे मैंने जो कुछ पाया है, वह अपनी किसी भी बड़ी सफलता में नहीं पाया। तुम मेरी जिंदगी की सबसे बड़ी सफलता हो।"

तारा ने छिटकते हुए कहा - "बस बस, रहने दो न मेरी सफलता का बखान। सारी रात बिता दी इसी चरचे में।"

मेज से सिगरेट का टिन उठाकर, सिगरेट निकालते हुए कर्नल ने कहा - "तुम्हारे ध्यान में मैंने रातें गुजार दी और तुम्हें एक ही रात के जागने से शिकायत होती है?"

तारा बोली - "हाँ-हाँ, लड़ाई में मेरा ही तो ध्यान आता होगा।"

सिगरेट जलाकर कर्नल ने कहा - "इसमें झूठ नहीं। लड़ाई के मैदान में सिपाही अपने घर का ध्यान ही करता है। अपने घर की हिफाजत के लिए ही वह दूने जोश से लड़ता है।"

"मगर इस तरह लड़ने से कहीं घर की हिफाजत होती है? दुनिया तबाह हुई जा रही है।"

सिगरेट का कश खींचते हुए कर्नल ने कहा - "तुम्हारी तरह से सोचते हुए तो मुझे भी सही मालूम होता है। मगर यह भी सच है कि सच्ची डिमोक्रेसी हासिल करने के लिए विरोधी ताकतों से हमें लड़ना ही होगा। उन्हें खत्म करना होगा। कश्मीर में ही ले लो-हैदराबाद को लो। सारी दुनिया के मसले को लो। इन झूठी ताकतों को कैसे खत्म किया जा सकता है? लड़ाई से ही न?

कर्नल कमरे में टहलते हुए बातें कर रहे थे। तारा मेज के सहारे खड़ी हुई थी। उसने कहा - "ठीक है। मगर यह क्यों नहीं देखते की इन लड़ाइयों से महँगी और लूट कितनी बढ़ती है। अखबारों में पढ़ती हूँ कि सारी दुनिया में यही हाहाकार मचा हूआ है। सबका ही नुकसान है। सबके आदमी लड़ाई में मरते-कटते हैं, तबाही मचती है। तब फिर सब राष्ट्र मिलकर यह क्यों नहीं मान लेते कि किसी दूसरे तरीके से सब के लिए नापास कर दिया जाएँ। जो सुख प्रेम और मेल में है, वो लड़ाइयों में कैसे मिलेगा?"

सिगरेट का आखिरी कश खीचकर उसे फेंकने की गरज से खिड़की की तरफ जाते हुए कर्नल ने हँसकर कहा - "फौज-पलटनें नहीं रहेंगी तो मुझे कौन पूछेगा?"

"मैं।" तारा ने अपना सारा विश्वास और प्रेम एक लफ्ज में भर दिया।

कर्नल खिड़की के बाहर देख रहे थे। कार सामने खड़ी थी। पिछले पहर की चाँदनी उस पर पड़ रही थी। अचानक उनकी निगाह ने गौर किया, उनकी कार में कोई बैठा था।

कर्नल में तेजी आई। फौरन अपनी अटैची खोलकर टार्च निकाली और मोटर पर रोशनी फेंककर देखा - एक औरत-मर्द बैठे थे, एक-दूसरे के सिर से सिर जोड़े हुए सो रहे थे।

कर्नल गरजे, "कार में कौन है?"

रात के सन्नाटे में आवाज चारों तरफ गूँज गई। तारा झपटकर खिड़की पर आई। मोटर पर सोता हुआ जोड़ा चौंककर जागा, सुखराम के बैठके की कुंडी खड़की, दो-चार घरों से आवाजें आने लगी, "कौन है? कौन है?"

कर्नल टार्च लिए हुए तेजी से दरवाजा खोलकर नीचे की तरफ चले।

कर्नल के नीचे पहुँचने तक सुखराम ने मुजरिम को पकड़ लिया था। चार-पाँच आदमी और भी आ गए थे। गालियों, घूँसों और तमाचों से सुखराम ने मर्द की मरम्मत शुरू

कर दी थी। औरत आदमियों से घिरी हुई अपने मरद को पिटते देखकर रो रही थी। मर्द सफाई दे रहा था कि मैं चोर नहीं हूँ।

कर्नल पहुँचे। मुजरिम के मुँह पर टार्च फेंकी। सुखराम और दूसरे लोगों ने पहचाना, रमजानी धोबी का लड़का कल्लू था और यह औरत? उसकी जोरू थी। मोटर में क्या करने के लिए आए थे? चुराने के लिए तो उसमें कुछ सामान नहीं। तब आग लगाने आया होगा। सुखराम के दिमाग में साँप रेंगा, रमजानी शहर में कपड़े धोता है। लीगवाले हकीम साहब, के यहाँ जाता है। यह साला जरूर पाँचवे दस्तेवाला है। सुखराम ने अपनी दलील पर जोर दिया। लोग इस दलील से जोर पाकर फिर कल्लू पर टूट पड़े। भीड़ बढ़ गई थी। दो-चार भद्दी गालियाँ और एक-दो तमाचे कल्लू की जोरू पर भी पड़ गए।

तारा, मलकिन, दीदी और महरी भी दरवाजे पर आ गई थी। औरत पर हाथ उठते देख, तारा तड़प उठी। उसने तेज आवाज में महरी से कहा, "स्यामी। उस औरत को यहाँ बुला ला। शरम नहीं आती औरत पर हाथ उठाते।"

मलकिन ने एतराज किया। तारा ने उसे अनसुना कर श्यामा को जाने के लिए डाँटा। श्यामा दौड़ी गई।

कर्नल ने पूछताछ की। सुखराम और दूसरे लोगों ने भी कल्लू से यह कबूल करवाना चाहा कि यह किसी का सिखाया-पढ़ाया हुआ जंडैल साब की मोटर में आग लगाने आया था। लेकिन मार खाकर भी कल्लू यह कबूल नहीं कर सका। वह अपनी घरवाली के जिद करने पर, उसे नजदीक से मोटर दिखाने लाया था। उसी की जिद पर वह उसे लेकर मोटर में बैठा और सुख में दोनों की आँखें लग गई।

लोगों को इस पर यकीन ही नहीं आता। वे चाहते थे कि कल्लू यह कबूल कर ले कि ये लोग हकीम के सिखाने से पाँचवें दस्ते की कार्रवाई करने आए थे।

सुखराम के बैठके में कल्लू की औरत रो-रोकर कह रही थी - "मेरी जिद के कारन आज उनकी जान पे बनि आई। हाय मोरे अल्ला, मोरी दीन-दुनिया उजरी जाति है।"

तारा की आँखों में आँसू बहने लगे। उसने श्यामा से कहा - "उन्हें यहाँ बुला लाओ और कहना कि कल्लू को भी ले आएँ।"

मलकिन और दीदी तारा को देख रही थी।

कर्नल तिवारी को अपनी पत्नी के कहने से, कल्लू की उस सफाई पर विश्वास हो गया कि जिसे किसी हद तक मानते हुए भी वह गँवार देहातियों के हंगामे से दूर रहकर, कोई फैसला करने की उलझन में खड़े-खड़े मार का तमाशा देख रहे थे।

बैठक के बाहर दहलीज में सुखराम थे, बड़कऊ थे, दो-एक पड़ोसी बुजुर्ग भी खड़े थे। तारा जोश में आकर बोली - "पाँचवाँ दस्ता इसमें नहीं हमारे मनों में है। एक झूठे-शक पे बेचारों की दुर्दशा कर डाली।"

कर्नल चुप रहे। उन्हें अफसोस था। बात को हल्का और खुशगवार बनाने की नीयत से उन्होंने कहा - "सवेरे तुम दोनों हमारे साथ चलना। मैं तुम्हें मोटर पर सैर कराऊँगा।"

"नहीं मालिक!" कल्लू बोला - "इसकी हठधर्मी के मारे एक बार मोटर पर बैठकर बहुत सजा भुगत ली। मार से जादा मुझे इज्जत का गम है। गरीब की सच्ची बात की भी बड़ों में कदर नहीं? मैं गरीब हूँ तो इसलिए पाँचवाँ दस्ता हो गया और जो लोग बड़े हैं, आपुस में एक-दूसरे का गला काटते हैं, आगें लगाते हैं, सारी खिलकत को उजाड़ते हैं, उन्हें कोई पाँचवाँ दस्ता नहीं कहता। वाह रे इनसाफ!"

कल्लू के माथे का खून बहकर आँख पर आया। तहमत के छोर से उसे पोंछते हुए उसने अपनी घरवाली से कहा - "चल री! हजार बार समझाया था कि तेरी झोंपड़ी में बड़े-बड़े महलों में भी जादा सुख है। मुलु तू नहीं मानी अब खड़ी क्या है, चलती क्यों नहीं?"

दोनों बैठके से चले गए।

सारा आलम सिर झुकाए खामोश रहा।

https://www.hindiadda.com/panchavan-dasta/

https://www.hindiadda.com/panchavan-dasta/